चित्रावली।

लड़केका चोर।

[१]

भट्टाचार्य महाशयके पैर छूकर मैंने शपथ की कि इस मामलेमें मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। क्या आज तक जो उन्होंने अपने पुत्र ही की भाँति दो बरस मुझे पाला था वह सब इस घृणित और जघन्य पापकी डालको मेरे सिर पर जमाने ही के लिए! राम! राम! सरला तो मेरी बहिन है! वह तो मुझको मन्मथ दादाके नामसे पुकारा करती है। भट्टाचार्य महाशय मेरे सिरमें दर्द रहनेके कारण ही इन दिनों मेरे पढ़ने लिखनेको कुछ शिथिल देख रहे थे। तब क्या मैं इसी बातसे नारकी हो गया? छिः छिः कैसी घृणा और कैसी लज्जाकी बात है?

कहावत है कि भूत मरकर ओझा होता है। परेश बाबू सीधे-सादे और धर्म-प्राण होने पर भी काफी बुद्धिमान् थे और इस संसारके नाटकको उन्होंने देखा भी खूब ही था। इसीसे उन्होंने घृणासे भरे हुए स्वरमें कहा—"भैया! मैंने जिस दिनसे तुम्हारे बालोंकी माँग और पहनावके ढँगको देखा था उसी दिनसे जान लिया था कि तुम बिगड़ गये; किन्तु मुझको यह नहीं सूझ पड़ा था कि तुम

। देदे कर मैंने
लिख दिया है
फ़िर एकवार चेष्
सू भी निकाल
। नाराज हो व

मुँहसे इतनी बातें
पस्थित हो रही थी।
नके जोशमें आकर
स तक ठीक पुत्रकी
बाबूको प्राप्त हुआ
था और
यजीवनकी कल्पना
बिच्छुओंके डंक लगनेकी सी वेदना होने
लगती थी।

इंट्रेन्समें पास होने पर जब मेरे कलकत्तेको भेजनेका प्रस्ताव हो रहा था, तब पिताने कहा था कि 'कलकत्ता बुरा स्थान है। तुमको अकेला बोर्डिंगमें नहीं भेजा जा सकता। परेश मेरा बालक पनका साथी है। उसके यहाँ सुखसे रहोगे। तुमको मैं वहीं भेजूँगा!'

पिताका कहना ठीक उतरा। यह सत्य है कि परेश बाबूके यहाँ सुख मिला। जब पहले ही पहल मैंने उनके घर पैर दिया था, तब उनकी स्त्री बोली थी, "आहा! कैसा अच्छा लड़का है! कैसा सुहावना चेहरा है! कैसे घूँघरवाले बाल हैं। रंग कैसा कच्चे सोनेका सा है!" यदि वह साध्वी उसी समय समझ लेती कि मेरे केशोंका एक एक घूँघर

[७]

भट्टाचार्य महाशय उस समय घर पर नहीं थे। मलिन वेशा और [illegible]डित केशा विधवा सरला अपना बायाँ हाथ फैलाये और सिर झुकाये [illegible] बैठी थी। उसके पास ही उसकी माँ, साक्षात् सावित्री, स्थिर [illegible]ष्टिसे बैठी हुई मेरी गणनाशक्तिकी परीक्षा कर रही थी।

वे माँ बेटी दोनों मेरे ज्योतिष पर मोहित हो रही थीं। मोहित होना ही चाहिए भी था, क्यों कि सरलाके जीवनकी कोई बात भी तो मुझसे छिपी हुई नहीं थी। उसके संगका सुख जितनी देर भी उठाया जा सके उतनाही उत्तम है। इसीसे सरलाका हाथ देख कर मैं उसके जीवनकी पिछली बातोंमेंसे एक एकको बतलाता जा रहा था।

इन सब बातोंको सरला अन्यमनस्क हो कर सुन रही थी। उसने [illegible]भाँति [illegible]ान तो नहीं पाया था किन्तु यह बात मैं भली भाँति समझ गया था कि पुरानी स्मृति उसके हृदयमें उथल-पथल मचा रही थी।

सरलाने अन्य मनस्कतासे पूछा—"क्या आप कह सकते हैं कि मरूँगी कब?"

"मरूँगी कब? मरूँगी कब?" यह प्रश्न मेरे कानोंमें गूँजने लगा! मैंने सोचा—सरला तेरी यह दशा किसके कारण हो रही है? हाय! तूने कैसी कुघड़ीमें मुझसे प्रेम किया था! और सरलाकी माता? जीमें आ रहा था कि इस बनावटी वेषको फेंक कर इसके दोनों पैर पकड़ रोकर कहूँ—"माँ—मुझको क्षमा करो!"

मुझको चुप देखकर सरला बोली—"क्यों क्या नहीं बतला सकते हो?"

मैंने सोचा नारी जीवन धन्य है! मृत्यु तो उसकी बहुत पहले ही हो जानी चाहिए थी। फिर उससे प्रकटमें कहा—"इनके सामने सब बातें कह दूँ?"

सरलाके प्राण सूख गये, वह बोली—"हाँ, क्या हानि है?"

मेरा उद्देश्य सफल नहीं हुआ। सोचा था एकान्त मिल जाने पर सरलाको अपना परिचय देदूँगा!

मैंने कहा—"कुसंगमें पड़कर तुम्हारा जीवन विषमय हो गया।"

दोनों आश्चर्यसे मेरे मुखको देखने लगीं। मैं कहने लगा—"तुमने तो मरनेकी चेष्टा की थी, किन्तु वह विफल हो गई।"

यह बात मैंने केवल अटकलसे कही थी। एक निष्ठुर अधर्मी पुरुष जिसके करनेके लिए तत्पर हो गया था, क्या उसके लिए एक लज्जासे झुकी हुई महिला तैयार न हुई होगी? अपने जीवनकी एक बात उसको सुनाई।

माँ और बेटी आश्चर्यके साथ मेरे पैरोंकी धूलि भक्तिपूर्वक लेने लगीं।

सरला बोली कि—आप अन्तर्यामी हैं।

मेरा प्राण पत्थरका बना हुआ था। मैं बहुतेरा रो चुका था—*साझीको अपने लाभमें साझा न बाँटना अधर्म है।* लड़केने मुझे बहुतेरा रुलाया था। यदि वह अपनी गर्भधारणीको नहीं रुला पाया तो इस कलिकालमें उसका जन्म ही वृथा है।

मैंने कहा—"यदि तुम बुरा न मानो तो एक और लक्षणका फल भी कह ही डालूँ।"

सरलाने मेरी ओरको निहार कर कहा—"क्या? अच्छा, कहिए।"

मैंने कहा, "तुम्हारे एक पुत्र है किन्तु जान पड़ता है कि इस जीवनमें तुह्मारा और उसका मिलाप न होगा।"

इस संवादका फल बहुतही बुरा हुआ। सरलाने स्थिर दृष्टिसे एक वार अपनी माँका मुख देखा और फिर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी!

मैंने उसकी माँसे कहा—"आप जल्द जल ले आवें।" माँ उठकर चली गई। मैं वस्त्रके अंचलसे सरलाके हवा झलने लगा। सरलाने नेत्र मूँद लिए। मैंने भरे हुए कण्ठमें कहा—"सरला! प्यारी! क्या मुझे पहँचानती नहीं हो?"

सरला बोली, "प्राणाधिक, आप हो? मुझको सन्देह हुआ था।"

युवती फिर मूर्च्छित हो गई। उसी समय मैं चल दिया। बाहर आकर मैंने कपड़ेके अंचलसे अपनी आँखें पोंछ डालीं। कहीं कोई संन्यासीके नेत्रोंमें जल न देख ले? संन्यासी बेचारेको जी भर रो लेनेका भी अधिकार नहीं है।

[८]

वर्धवानके सीनियर डिपुटी मजिस्ट्रेटकी कोठी आज लोगोंकी भीड़से खचाखच भरी हुई है। बालकोंकी एक टोलीने "कृष्णसागर" के किनारे बैठकर सलाह की कि आज स्कूलसे भाग चलकर बालकके चोरका मुकदमा देखना चाहिए। आज धर्म-द्वेषी लोगोंमें बड़ी चेतनता आई है। वे तो समझते ही हैं कि धर्म अधर्म सब झूंठ है। गेरुए वस्त्रवाले साधु लुच्चे होते हैं, चुपचाप चोरी किया करते हैं। जो लोग घरमें निकम्मे थे और दूसरोंकी कमाई खाते थे उनके लिए एक काम मिल-गया, देखो इस चोरीका क्या रंग खुलता है।

ग्राण्डट्रंक रोडसे पश्चिम ओरको चले जाते हुए मैंने राहमें एक जगह पर अपने जीवनके सर्वस्व पुत्रको खेलते हुए देखा था। जीमें आया कि जब ईश्वरने एक ऐसा अवसर सौंपा है तब व्यर्थ कष्ट उठाते फिर-नेकी क्या आवश्यकता है? उसकी उस सुन्दर और संसारको मोहित करनेवाली सूरतको देखकर मेरा हृदय एक बार फिर पितृस्नेहसे भर-गया। सोचा कि हाथमें पाये हुए इस रत्नको अब छोड़ देना मूर्खता

है। इसीसे उसको उठाये लिए जा रहा था। पुत्र तो मेरा ही था, तब किसी और मनुष्यकी आज्ञा लेनेकी आवश्यकता? किंतु मेरा जाना अधिक दूर नहीं हुआ था कि पुलीसने राहहीमें मुझको गिरफ्तार कर लिया और आज मैं वर्धवानके सीनियर डिपुटीकी अदालतमें उपस्थित किया गया।

हाकिमको देखते ही मेरा हृदय शीघ्रतासे धड़कने लगा। मैंने देखते ही अपने पिताको पहँचान लिया। किन्तु पिता अपने छोड़े हुए पुत्रको नहीं पहँचान सके। आरोपीके वकीलने एक बड़ी लंबी चौड़ी वक्तृता देना आरंभ किया। मुझको उन्होंने धूर्त्तसाधु बतलाया और कहा कि इन बदमाशोंका दल है और उसका प्रधानकार्य अँगरेजी राज्यसे बालकोंको चुरालेजाकर विदेशी राज्योंमें वेंचना है। इस बातको हम लोग समझते भली भाँति हैं किन्तु फिर भी प्रमाण नहीं दे सकते। अत एव उन्होंने हुजूरसे प्रार्थनाकी कि अभियुक्तका ३६३ धाराके अपराधमें विचार करें। वकीलपुंगव यह कहनेसे भी नहीं चूके की यदि इसके गुप्त अड्डेकी तलाशी ली जावे तो चोरीका बहुत माल निकलेगा। उन्होंने हाकिमको यह विश्वास भी दिलाया कि तहकीकात समाप्त हो जाने पर पुलीस भी इसी अपराधमें इस अभियुक्तका चालान करेगी।

क्रमसे साक्षीका बयान हुआ। एक प्रकारसे मेरा अपराध साबित हो गया।

हाकिम अर्थात् मेरे पिताने कहा—"इस बड़े अभियोगका विचार मैं स्वयं न करके सेशन्स सुपुर्द करूँगा। अच्छा—तुमको कुछ कहना है?"

पहले तो मैंने सोचा कि जेलहीको जाऊँ, किन्तु फिर विचारा कि जेल जानेसे भी क्या होगा? जेल जानेसे तो फिर उद्देशके सिद्ध होनेकी

कोई आशा ही नहीं रह जायगी। इसके बदले मैंने अपना परिचय देकर सच बात कह देना ही ठीक समझा। मैं पितासे तो कोई कृपा चाह ही नहीं रहा था। जब वे विचारासनपर बैठे हुए हैं तब उनको राजाका प्रतिनिधि समझना ही चाहिए। इस लिए हाकिमके सामने निर्दोषता प्रमाणित करनेमें क्या हर्ज है ?

यह सोचकर मैंने हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर! यदि अदालतके कमरेको लोगोंसे खाली करा दिया जाय, तो मैं इस जटिल रहस्यको खोल दूँ।"

हाकिम राजी हो गये। अब पिता, पुत्र और सरकारी वकीलके अतिरिक्त वहाँ और कोई भी नहीं रह गया।

मैंने दाढ़ी, मूंछ और जटा आदि सारे छद्मवेशके साजको हटाकर दूर फेंक दिया और नीचेको मुख करके एक ही साँसमें जीवनके सारे इतिहासको पिताके सामने कह डाला। साक्ष्यरूपसे लड़केके गलेके तावीजको दिखाया और कहा कि लड़का मेरा है इस बातका प्रमाण यह तावीज ही है।

जो बात मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोची थी, वह हुई।

पिताने इजलाससे उठकर मुझे अपने गलेसे लगा लिया। उस समय उस लड़केको छोड़कर उस अदालतमें सबकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। लड़का आश्चर्यसे आँखें फैला फैला कर हम लोगोंकी ओरको देख रहा था।

माताका हृदय शांत हो गया था, लड़केकी ओरको मेरी ऐसी कर्त्तव्यपरायणता देखकर पिता सन्तुष्ट हो गये थे, उनकी आज्ञासे लड़केको मैं घर ले गया। सदय ग्वालाभी हमारे यहीं आ रहा। किन्तु मेरे हृदयको फिर भी पूरी शांति नहीं मिली। शांति होती भी कैसे ? पापकी

याद और पापका स्पर्श आदि निर्मल शांतिके शत्रु हैं, इस लिए मेरा शेष जीवन आनन्दसे नहीं वीता। किन्तु सरला मुझसे अधिक भाग्यवान् थी। जिस दिन मैं सरलासे मिलकर आया था, उस दिन वह मूर्छित होकर गिर पड़ी थी। उसी मूर्छाने उसको शान्ति ला दी, उसके तीन दिन पीछे ही अभागिनी अनंतपथकी यात्राके लिए निकल पड़ी थी।

स्मृति।

[१]

" यह आजसे पन्द्रह वर्ष पहले की बात है—"

दो दिन बराबर वृष्टि होते रहनेसे घाट सब डूब गये थे, घरसे बाह निकलना कठिन हो गया था। काम धन्धा सब बन्द था। नहीं कह सकता कि यदि संयोगसे मित्र अमरनाथ न आगये होते और उनका साथ न होजाता तो ये दो दिन कैसे कटते। अमर कल प्रातःकाल आये थे। थोड़ी ही देरमें बड़े वेगसे वृष्टि होने लगी। उनके घरको कहला भेजा कि यदि वृष्टि नहीं रुकेगी तो अमरनाथ यहीं रहेंगे। संध्यासे पूर्व वादलोंको मानों कुछ आलस्य सा आ गया और मेह भी कुछ मन्द पड़ गया। मित्र अमरनाथ और मैं दो कुर्सियें उठा लेजाकर बरामदेमें जा बैठे। रास्तेका जल कलकल शब्द करता हुआ नदीके स्रोतकी भाँतिसे दौड़ रहा था और लोगों के दल जलको चीरते हुए अपनी अपनी जानेकी जगहोंको जारहे थे। मेरे मनमें अकस्मात् एक पुरानी कहानी जाग उठी। मैंने कुर्सीको और भी अमरनाथके अधिक पास खींच ले जाकर कहा—"यह आजसे पन्द्रह वर्ष पहलेकी बात है, उस दिन भी समस्त दिन आज से अधिक मूसलधार वर्षा होनेके

पीछे ऐसे ही संध्यासे पूर्व वृष्टि रुकी थी । दादाके विवाहमें मैं समोला बना था और बहूके साथ एक ही पालकीमें बैठा हुआ मैदानमें होकर घरको आरहा था । मैदान का जल कलकल शब्द करता हुआ एक धारसे दूसरी धारमें जा रहा था पालकीके दोनों ओर हरे रंगके घने नाजके पौधे हवाके झोंकोंसे झूम रहे थे । बहू समस्त दिन रोते रोते चुप होरही थी ।

याद पड़ती है कि उस अवसर पर मैंने उसको कितनी ही बातें सुनाई थीं ठीक उन्हीं दिनोंमें मैं कलकत्तेके एक स्कूलमें भर्त्ती हुआ था । क्रिकेट मैच, फुटबाल का खेल, और ईडन गार्डेनकी सैर आदि अपनी छोटी मोटी बहादुरी की सारी बातें उसको एक स्वांसमें सुनाता जारहा था और गोरी बहू भी अपने लाल दुपट्टेमें होकर आँखें फैलाकर मेरे मुँहको देखती हुई मेरी बातोंको तृप्ति पूर्वक सुन-रही थी । उससे पहले किसीने मेरी इतनी बातें नहीं सुनी थीं और न उनको सुनने ही योग्य समझा था । उस दिन मुझको श्रोता मिल गया । इस कारण बड़ा आनन्द हुआ । धीरे धीरे हमारी पालकीने गाँवके भीतर प्रवेश किया । उस समय संध्या होगई थी और तालाबके किनारे पर आतिशबाज फुलझड़ी और गोले तथा बाजे-वाले ढोल और झाँझ आदि लिए हुए दूल्हा और दुलहिनको लेजानेके लिए राह देख रहे थे । स्मरण होता है कि आतिशबाजसे मैंने भी एक फुलझड़ी लेली थी और पालकीके एक ओरको हाथ बढ़ाकर उसको छोड़ रहा था । जब फुलझड़ीका गुल झड़कर नालेके जलके ऊपर गिरता और पटाखा छूटनेकासा शब्द होता था तब मैं उत्सुक होकर यह देखनेके लिए बहूके मुखकी ओरको देखने लगता था कि मेरी बहादुरी देखती जाती है या नहीं ।

[२]

इसके बाद वैशाख मासमें जब ग्रीष्मकी छुट्टियोंमें मैं घरको गया तों भाभी कुछ ही पहले हमारे घर आई थी। उसने आकर मुझसे चुपकेसे कहा– " देवर, मुझको यहाँ आये हुए पन्द्रह दिन होगये। मैं रोज यही विचारती थी कि तुम कब आवोगे। भोजन करके एक बार ऊपर अवश्य आना, मैं तुम्हें कितनी ही चीजें दिखाऊँगी।

दादाके घर जाकर देखा कि भावजने पोतके बहुतसे खिलौने टेबिल पर सजा रक्खे थे मुझको देख कर वह हँसकर बोलीं—"अच्छा-देवर, ठीक ठीक बतलाओ कि यह गाड़ी कैसी लगती है। इन सबको मैंने अपने आपही बनाया है। माँने मुझसे कहाथा कि इस सब रद्दी खातेको वहाँ ले जाकर क्या करेगी; किन्तु मैंने उनका मना करना नहीं माना और तुमको दिखानेके लिए ये सब चीजें यहाँ ले आई।"

वास्तवमें वे बहुत ही अच्छे ढंगके बने हुए थे। मैंने कहा कि भाभी, तुम ऐसा सुन्दर खिलौना बना लेती हो। अब पूजाकी छुट्टीमें जब घर आऊँगा तब तुम्हारे लिए बहुत सा पोत और तार लेता आऊँगा।

भावजने उसीदम हँसकर उत्तर दिया—" नहीं देवर, पोत नहीं लाना, किन्तु थोड़ासा काले रंगका ऊन लेते आना। मैं गलेबन्द बुनना सीख रही हूँ एक तुमको बुन दूँगी।"

अमर, वह गलेबन्द आज भी मेरे गलेमें पड़ा हुआ है किन्तु हाय ? इसकी बनानेवाली नहीं है। कुछ वर्षोंके लिए इस पृथ्वीके रंग मंच पर एक दुःख भरे हुए नाटकको खेलकर कौन कह सकता है कि वह कहाँको चली गई ! वह विजलीकी चमक जैसी रूपराशि और सरलतामयी हँसी सदाके लिए मेरी आँखोंसे ओझल होगई। हाय! भाभी,

हाय ! करुणाकी प्रतिमा और दयामयी भाभी, तुम इस आभागेके स्मृतिमन्दिरमें इस निष्ठुर चिह्नको क्यों छोड़ गई ?

(३)

ब्याहके कोई सात वर्ष पीछे किसी एक सौदागरके आफिसमें नौकरी लगजानेसे दादा कलकत्ते आय। मैं उन दिनों इन्ट्रेंस पास करके एफ. ए. में पढ़ने लगा था। उन्होंने मेरे ही मेसमें रहकर कार्य करना आरंभ कर दिया। साहबने उनकी एकाग्रता और दक्षतासे बहुत प्रसन्न होकर उनके पदकी शीघ्र ही उन्नति करदी। दादाके पास उनके आफिसके साथी निशानाथ बाबू संध्याको प्रतिदिन ही मिलने आया करते थे; वे मुझको पहलेहीसे अच्छे नहीं लगते थे। इसी प्रकारसे दोचार महीने कट गये। इसके बाद मैं देखने लगा कि दादा प्रतिदिन संध्याके बाद दो तीन घण्टे बाहर बिताने लगे हैं। उनके बाहर जानेकी सज--धजको देखकर मेरे मनमें एक प्रकारका भय और सन्देह होने लगा। एक दिन मैंने उनसे पूँछा कि आप रोज संध्याके बाद कहाँको जाया करते हैं ?

दूसरी ओरको मुँह करके उन्होंने उत्तर दिया कि सारे दिन परिश्रम करनेके पीछे चुप बैठे रहना अच्छा नहीं लगता, इस लिए निशानाथ बाबूके घर गानेबजानेमें जी बहलाने चला जाता हूँ। मैंने उनके उत्तरको तो सुन लिया, परन्तु अपने मनके सन्देहको मैं नहीं हटा सका।

इसके अनन्तर सरस्वती पूजाका दिन आया। पढ़नासुनना बन्द था। समस्त दिन ताश पीटनेके पीछे संध्यासे पूर्व कुछ थक कर लेट रहा था। एकाएक ध्यान आया कि दादा दस बजे भोजन करके बाहर गये हैं और जलपानका समय निकल चुकने पर अब भी लौटे नहीं हैं।

मेरे मनमें बड़ी ही दुर्भावनायें आईं—मैं चुप हो कर सो रहा। मुझसे बाहर नहीं निकला गया। रात्रिके आठ बज गये। रमेशने आकर कहा क्यों, चुप कैसे पड़े हो? दादा कहाँ हैं? पूजाके निमंत्रणमें गये हैं न? उसके निष्ठुर परिहाससे मुझको बहुत कष्ट हुआ; कोई उत्तर बिना दिये मैं पहलेहीकी भाँति पड़ा रहा। पहलेहीसे भूख नहीं थी, फिर भी कुछ खाना चाहिए, इस लिए थोड़ा सा खाकर बिछौने पर जा पड़ी। कुचिन्ता और वेदनासे मन जला जा रहा था, और दुःखसे भरे होनेसे नेत्र घिरे और भरे जा रहे थे। मैं सो गया। भाई अमर, उस दिन पिछली रातको जो स्वप्न मैंने देखा वह आज भी मनमें अच्छी तरह अंकित हो रहा है, न जाने उसे कभी भूलूँगा या नहीं। उस डरावने स्वप्नकी स्मृतिसे आज भी शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। मैंने देखा कि आकाश कुहरेसे भरा हुआ है। सामने जहाँ तक दृष्टि पहुँचती थी वहाँ तक समुद्र फेन उड़ाता हुआ उमड़ रहा था। समुद्रके गर्जनसे कान बहिरे हुए जा रहे थे। मैंने देखा कि दादा उसमें गिरकर डूबे जा रहे हैं। तट पर भावज खड़ी थीं, उनका सुनहरा शरीर कालिमामय और निर्दोष सुन्दर बदन शवकी भाँति सूखा हुआ था। जलको काँपते हुए हाथसे दिखाती हुई वह मेरी ओरको अति दीन और अति करुण नेत्रोंसे देखती हुई टूटे हुए स्वरसे कह रही थीं, "देखो देखो, मेरा सर्वस्व जाता है। यदि तुम रक्षा कर सकते होओ तो करो।" मैं बहुत ही मर्माहत हो कर चीख पड़ा, मेरी नींद टूट गई। उठकर देखा तो दादा तब भी नहीं आये थे।

[४]

एक दिन भोजन करते करते दादाने कहा "सुकुमार, हमारा आफिस यहाँसे बहुत दूर चला गया है और बड़े बजारमें ही

एक सुभीतेका मकान मिल रहा है। वहाँ ही जा रहनेकी इच्छा होती है।" मैंने सोचा ये अपने पापाचारके मार्गको एक साथ साफ कर लेनेकी ठान बैठे हैं। छोटेसे काँटेको निकाल कर दूर फेंक देनेकी उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है। अभिमानसे मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। आँखोंको फाड़ कर आँसू बाहर निकले पड़ते थे। बड़ी कठिनाईसे मैंने उनको रोका। यह मेरा स्वभाव है कि जब हृदयमें बड़ी वेदना होती है तब मुखसे मैं कुछ भी नहीं कह सकता। सर्व नाशकी सोलहों आने तैयारी होने और उनको अपने पास ही रखनेकी बड़ी इच्छा रहने पर भी स्वभावदोषसे मैं कोई बात नहीं कह पाया।

दो दिन बाद दादा नये घरको चले गये। उस दिन मैंने जो पत्र अपने घरको लिखा उसमें सब हाल लिख दिया, और माताको यह निषेध लिख दिया की भाभीको इस बातका कुछ भी पता न लगने पावे। चिन्ता और मनके कष्टसे मैं दिन विताता रहा। जब मिलनेको दादाके घर जाता था और वे नहीं मिलते थे, तब हार कर बीचबीचमें उनके आफिसहीमें जाकर मिल आता था। उनसे मैंने बारबार अनुरोध किया कि एकवार घरको चलिए ऐसा करनेसे मैंने विचारा था कि उस सरलताकी प्रतिमा और पुण्यमयी भावजको देखकर ये अपने पूर्व चरित्रपर फिर आ जायँगे। किन्तु हाय वह सब विफल हुआ। वह प्रति सप्ताह जानेकी प्रतिज्ञा तो कर डालते थे, किन्तु वह प्रतिज्ञा कार्यमें परिणत नहीं होती थी वे घरको नहीं जाते थे।

एक दिन सुना कि तहबीलमें गड़बड़ करनेसे दादा नौकरीसे हटा दिये गये। साहब उनसे आन्तरिक प्रेम करते थे इस लिए वे उनको हटा देकर ही चुप हो गये। दादा लज्जाके कारण ~~मुझसे नहीं~~ मिले और घरको चले गये।

निष्कलङ्क वंशमें कलंकका यह गहरा घाव बड़ा कष्ट दायक था, तो भी मेरे मनके एक गुप्त प्रदेशमें एक प्रकारकी शांतिहीकी छायासी पड़ रही थी। मैंने सोचा अब दादा राहपर आ जायँगे।

[५]

पूजाकी छुट्टीमें घर जाकर देखा कि माताजी पहँचानी नहीं जातीं, उनका शरीर इतना जर्जर हो गया है।

मैंने पूँछा कि दादा कहाँ हैं। इसपर वे रो पड़ीं और बोलीं, 'बेटा सुकुमार, यह मैंने कभी भावना भी नहीं की थी कि विधाताने मेरे भाग्यमें बुढ़ापे में इतना कष्ट लिख दिया है। नवकुमार दो दिनसे वर्धमान गया है और कह गया है कि मुझे लौटनेमें देर लगेगी। जान पड़ता है कि वह तुझसे मिलना नहीं चाहता।"

"क्यों, उनको इतने लज्जित होनेकी तो कोई भी आवश्यकता नहीं थी। भूल मनुष्यहीके लिए है पग पग पर मनुष्यसे भूल होती है। बुरे संगमें पड़कर उनका निष्कलंक चरित्र कुछ महीनोंके लिए बिगड़ तो गया ही था, किन्तु मैं इसीको बड़ा लाभ समझता हूँ कि उन्होंने अपने आपको सँभाल तो लिया।"

"वह सँभलेगा क्या खाक! न जाने वहाँसे क्या पीना सीख आया है। आठों पहर वही पीता है और मेरे हाड़ जलाता है। यह बेचारी पराई लड़की, गरीब गऊ, हाय! इसके भी भाग्यमें इतना कष्ट लिखा है! उसके शरीरके एक एक गहनेको उतार ले जाता है और कलारकी दूकानपर जाता है। बेटा सुकुमार, और क्या कहूँ—कहनेकी बात भी नहीं है—अच्छा तू अब कपड़े उतार और हाथ मुँह धोकर कुछ खा ले" यह सब सुनकर भावजसे मिलने जानेका मेरा साहस नहीं हुआ। हाथ पैर धोकर खानेको बैठ गया।

[६]

दादाके कमरेमें जाकर मैंने जो देखा उससे एक वारही स्तंभित और मर्माहत होकर रह गया वहाँ मैंने देखा कि आठ मास पूर्व जिस मन्दिरमें मैं अच्छे शरीरवाली, आभामयी और सदा हँसमुख रहनेवाली पुण्य प्रतिमाको प्रतिष्ठित कर गया था उसको किसी नराधम चोरने तोड़ फोड़ डाला है और उसके बदलेमें एक झुलसी हुई अति दीन, अति हीन, और शीर्ण शरीर स्त्रीके कंकालको बैठाल दिया है। जिन नयनोंको मैं बहुत उज्जल और बहुत मधुर देख गया था आज वेही कोओंमें धँस रहे थे और प्रभाहीन मलीन हो गये थे। भावज मुझको देख कर कुछ मुर्झाई हुई हँसीं। भाई अमर, ' वह हँसी ऐसी थी जिसको कि तुम नहीं समझोगे और समझ सकोगे भी नहीं। वह हँसी मानव-हृदयकी अनन्त यातनाकी विकाश मात्र थी, उसमें मिठास नहीं थी, उसमें आनंद नहीं था; वह बहुतही म्लान और निराश प्रकट करनेवाली थी। उन्होंने कहा कि " देवर, तुम इतने कमजोर हो गये हो।"

" और तुम--भाभी तुम--यह तुह्मारे हाथ कैसे हो गये " मैंने आश्चर्यसे पूँछा--" क्या बीमार तो नहीं हो गई थीं ? "।

भावजकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। मुझको और कुछ पूछना बाकी नहीं रह गया।

भावजने रोते रोते कहा " देवर, यदि तुमने एकवार मुझसे कहा होता; एक वार भी मुझको खबर की होती--"

मार्गमें एक साथ सर्प सामने आजानेसे भी पथिक इतना नहीं घबराता है। मुझे आज सूझ पड़ा कि मैंने कैसी सर्वनाशी भूल की थी। भयानक आत्मग्लानिसे मेरे मर्मस्थल जल उठे। हाय, हाय, मैंने

क्या किया, क्यों नहीं कह दिया ! अपनी वस्तुको बचानेकी वे तो जीजानसे चेष्टा कर लेतीं ! हाय, हाय, मैंने उनसे सब बातोंको क्यों छिपाया ! मुझमें भावजकी ओरको मुँह उठाकर बात करनेकी सामर्थ्य नहीं रही मैं निःशब्द होकर रोने लगा ।

मुझको इस अवस्थामें देखकर भावजने कहा, " नहीं देवर, मैंने यह नहीं कहा । इसमें भला तुम्हारा क्या दोष है ? भाग्यमें जो लिखा है वह तो होगा ही । मेरे देवतुल्य स्वामीका स्वभाव दूषित होनेवाला नहीं था । निश्चय जानो कि किसी बुरे ग्रहकी कुदृष्टिसे ही यह सब हो रहा है । शान्त होओ, घबराओ नहीं, ग्रहका भोग पूरा होते ही इन सब बातोंका भी अवश्य अंत हो जायगा । हमारे अच्छे दिन फिर लौट आयँगे । "

[७]

बाहरके मकानका माल असवाव कुछ भी नहीं रहा था । फुलवाड़ी भी नष्ट हो गई थी । हमारा सुशृंखल मकान विशृंखलाका आदर्श वन गया था। घर पर कोई आता जाता नहीं था । संध्याके समय छोटी बहिन यामिनीने आकर कहा, " छोटे दादा ! दादा तो बिगड़ ही गये । इधर घरमें एक स्त्री हत्या हुई जाती है । इस लिए तुम्हें अपना कर्तव्य करना चाहिए । भाभी दादाको खिलाये बिना खाती नहीं और दादाके आनेका कोई ठीक नहीं है । पिछले महीनेमें भाभीने पन्द्रह दिन खाना नहीं खाया । भूखके मारे उसका शरीर टूटगया है और रोज संध्याको उसे ज्वर हो आता है । नहो तो उसको कुछ दिनोंको उसके बापहीके घर भेज दो । तुम कहोगे तो तुम्हारा कहना मान लेगी, हम तो उससे कई वार कह चुकीं । "

पूजाके कई दिन बीत जाने पर मैंने एक दिन भावजसे बापके घरको चली जानेको कहा। उन्होंने रोते रोते उत्तर दिया, "देवर तुम मुझसे अनुरोध न करो। उनकी अवस्था ऐसी हो रही है। यदि मैं भी चली जाऊँगी तो उन्हें कौन देखेगा सासजी बूढ़ी हैं, वे कुछ कर नहीं सकतीं। यहाँसे चली जाकर मैं एक मुहूर्तको भी निश्चिन्त न हो सकूँगी। हारकर मैं निरुत्तर होगया। वैद्यको बुला कर मैंने औषधादिककी व्यवस्था कर दी। घर पर मन नहीं लगा। मैं कलकत्ते चला आया।

[८]

कलकत्ते पहुँचने पर भी मैं अपने मनको पढ़ने लिखनेमें नहीं लगा सका। उस पर चिन्ताका बोझा लदा हुआ था। मित्रोंके साथमें और खेल कूदमें जी नहीं लगता था। जितना भी हो सकता था पढ़नेकी चेष्टा करता था। अच्छा न लगने पर गोलदीघि पर जाकर चुपचाप जा बैठता था। एक दिन कालिजसे आकर मैंने देखा कि मेरे नामकी दादाके हाथकी लिखी हुई एक चिट्ठी पड़ी हुई है। बहुत दिनों पीछे दादाकी चिट्ठी देख कर आश्चर्य हुआ। पत्र पढ़कर मेरे होश जाने लगे। बड़े कष्टसे अपने आपको सँभाल कर मैं स्टेशनकी ओर चल पड़ा।

[९]

मैंने घर आकर देखा कि सब मिट गया! मुझको देख कर दादा बालककी भाँति रो पड़े। उन पर मेरी ममता नहीं हुई। हृदयकी आग दूनी होकर जल उठी। उनकी शांतिके लिए भी मैं प्रार्थना नहीं कर सका। मनमनमें मैंने कहा, "कुछ दिन पूर्व चेतजानेसे शायद सब बिगड़ा हुआ काम बन सकता था। अब तुमसे कहनेकी और कोई बात नहीं है और न मैं कुछ कह ही पाऊंगा। भगवान् करे कि

तुम्हारा पछतावा अब तुमको पापपथमें न जाने देवे—समस्त जीवन यह अनुताप-वारि तुम्हारे नयनोंसे अजस्र धारामें बहता रह कर तुम्हारे घोर पापकी कालिमाको धो डालनेकी चेष्टा करता रहे। जिस रत्नको तुमने खो दिया वह अब नहीं मिल सकता है। उस दिन जिसने तुम्हारे लिए सर्वस्व देडाला वह अब तुम्हारे सौवार रोनेसे भी नहीं लौटेगी। पापी और स्वार्थी मनुष्यके निष्ठुर निष्पीड़नको तुच्छ करके वह किसी पुण्यमय सुरभित, और सुन्दर देशको सदाके लिए चल गई। स्वार्थका न रुकनेवाला स्रोत वहाँ तक बहकर नहीं जा सकता, पापकी सर्व नाशी आग उस पुण्यमय देशको नहीं जला सकती। वहाँ मदोन्मत्त मनुष्यका निष्ठुर हाथ, दुर्बल पर अत्याचार नहीं कर सकता। अनन्त शांतिके मध्यमें अनन्त प्रेमसे वह देवप्रतिमा अनन्त काल तक वहां प्रतिष्ठित रहेगी।"

* * * * * *

मैं नहीं कह सकता कि हम दोनों कितनी देरतक निस्तब्ध रहे। यह निस्तब्धता एक राहगीरकी गतिसे टूट गई। संध्या हुए बहुत देर हो गई थी। राहगीर अपने मनमें गारहा था—

" रच्यो हरिखेलहिमें संसार।
भवविचलाय अनेक खिलौना कीन्हों खेल अपार।
खेलिखेल कछु काल अंतमें फेंक दई खिलवार॥ "

मार्गमें।

[१]

हरिश बाबूसे मेरा पहिला परिचय हाईकोर्टकी ट्राममें हुआ। मैं अपने आफिससे लौटते समय स्वभावके अनुसार पहिले दर्जेके कमरेमें

चढ़गया । जब हाथमें टिकिटोंकी गड्डी और कमरमें टिकिट काटनेका यंत्र लटकाये हुए ट्रामका कंडक्टर आकर उपस्थित हुआ, तब जेबमें हाथ डालकर अपनी तहबीलकी ठीक अवस्थाको जानकर मैं बड़े चक्करमें पड़ा । जेबमें हाथ डालकर जितनी बार भी गिना उतनी ही बार-एक, दो, तीन, चार, पाँच,-पाँच पैसोंसे अधिकका होना नहीं मालूम होसका । मैं बड़ी विपदमें पड़ा चकित होकर एक बार गाड़ीके भीतर देख गया; गाड़ी आफिससे लौटे हुए क्कर्कोंसे भरी हुई थी । गाड़ीमें जाना पहिचाना ऐसा एक भी चेहरा दिखाई नहीं पड़ा कि जो एक पैसा कर्ज देता । कण्डक्टर गाड़ीसे निकलनेकी राहमें खड़ा था, इससे उतर पड़नेकी भी सूरत नहीं थी । यह एक नई भाँतिकी विपद थी कि जिसने आकर मेरे मनकी स्थिरता पर गोली बरसाना आरंभ कर दिया था । यह लाख रुपयेकी चिन्ता नहीं थी, नौकरी खोजनेकी भावना नहीं थी, बापके श्राद्धकी समस्या नहीं थी, काली लड़कीके विवाहकी दुश्चिन्ता नहीं थी इस सामान्य एक पैसेके अभावसे मेर श्यामवर्णके मुखने बैंगनी रंग धारण कर लिया ! और कंडक्टर भी बड़ा असभ्य था, बोल उठा कि "महाशय, टिकिट ?"

मैं जातिका बंगाली ठहरा, इस लिए कुटिल बुद्धिका मौरूसी पट्टादार हूँ । मैंने सप्रतिभ भावसे कहा—" बाबू तुम्हारे पास दस रुपये तो नहीं हैं ?"

उसने कहा—नहीं महाशय, मुझको डिपोसे दस रुपयेकी इकट्ठी रेजगारी कैसे मिल सकती है ?

मैंने कहा—ऐं ! तब तो बड़ी मुश्किल दिखाई देती है । देखनेसे जान पड़ा कि खुरदा पैसे तो मेरे पास पाँचसे अधिक हैं ही नहीं ।

धीरेधीरे कण्डक्टर मुझसे जिरह करनेलगा—" चवन्नी है ? अठन्नी है ? रुपिया है ? " मैं भी मुलामियतसे सिर हिलानेलगा ।

मेरे पास ही हरिश बाबू बैठे थे । उन्होंने कहा—महाशय, यदि आपजीमें कुछ ख्याल न करें तो मैं एक पैसा उधार देसकता हूँ ।

उनके चेहरे पर विशेष रूपसे एक मधुर हास्य चमक रहाथा; इस लिए उनपर कुछ अप्रसन्नता नहीं हुई और उनसे मैंने कहदिया " नहीं, नहीं, आप क्यों कष्ट करते हैं ? मैं उतरकर किरायेकी गाड़ीमें बैठ जाता हूँ ।

उन्होंने कहा—इसके लिए संकोच न कीजिए आप प्रायः मुझको ट्राममें मिला ही करते हैं, पैसा लौटा देनेका अवसर मिल ही जायगा ।

वह भी हँस दिये, मैं भी हँस दिया और कंडक्टरके यंत्रने भी ठुं करके एक मधुर शब्द किया । मैंने टिकिट ले लिया । इस घटनाके दस बारह दिन बाद शनिवारको मैं घरको जारहाथा ।

मझले दादाका लड़का बीमार पड़ा था ; इस लिए मैं घरको जाते समय बी. एस. ब्रदर्सके बिस्कुटोंका एक डिब्बा भी साथमें लिए जारहाथा । हावड़ा स्टेशनसे जब गाड़ी छोड़ी गई, तब मैंने देखा कि सर्वनाश होगया ! बिस्कुटके डिब्बेको मैं स्टेशनकी बैठनेकी बेंच ही पर भूलगया । अब बड़ी विपदमें पड़गया । मुर्गीका पाला हुआ हंसिनीका बच्चा सहसा तालाबको देखकर जातीय स्वभाववश उसमें तैरने लगकर मुर्गीको जिस भाँति विपदमें डाल देता है मेरी विपद भी उसही प्रकारकी होगई । जैसे कि मुर्गी दो हाथ दूर खड़ी रहने पर भी अपने पाले हुए बच्चेकी रक्षा नहीं कर पाती है, मैं भी उसी भाँतिसे पासहीके बिस्कुटके डिब्बेको न उठा सका ।

" कुली, कुली, महाशय, गार्डसाहब " आदि अनेक चीत्कार की किन्तु भाग्यदोषसे मेरे चीखनेको किसीने भी नहीं सुना। गाड़ी भीम वेग और असुर विक्रमसे दौड़ने लगी। अन्तमें थककर मैं बैठ रहा।

पहले घबराहटमें मैं अपने साथी यात्रियोंको नहीं देख पाया था। बिस्कुटके डिब्बेको पानेसे हताश होकर बैठते ही मैंने सामने हरिश बाबूको देखा। उनके मुखके उस मृदुमन्द हास्यको देखते ही मुझे बड़ी लज्जा हुई। मैंने सोचा कि इस पुरुषने क्या मेरी विकृत अवस्था देखनेके लिए ही जन्म लिया है ?

हरिश बाबूने कहा—क्यों आशु बाबू ऐसे घबराये हुए क्यों हो ?

मैंने सप्रतिभ भावसे उत्तर दिया—नहीं कोई विशेष बात नहीं है। एक पोटली भूल आया हूँ उसीके उद्धारकी चेष्टामें लगा हुआ था।

उन्होंने कहा कि काहेकी पोटली थी ?

मैंने सोचा कि यदि कहे देता हूँ कि दस आने दामके बिस्कुटोंके डिब्बेके पीछे इतनी घबराहट थी तो बड़ी ही हीनताका परिचय देना होगा। और ट्रामकी उस बातको और आजकी घटनाको मिला कर यह भला आदमी मुझे बहुत ही अपदार्थ समझ लेगा। इस लिए मैंने उनसे कहा—एक बिस्कुटका बाक्स, दो पाजामें, जापानी शिल्पकी एक रकाबी, शौकीनी दिखानेको एक शीशी केशरञ्जन तैल और टेनिस खेलनेका एक रैकिट, विद्या दिखानेके लिए एक जिल्द रवीन्द्र ग्रन्थावली और अर्चना मासिक पत्रिकाका नाम ले दिया।

हरिश बाबूने भौंहें सिकोड़ कर कहा—आप तो स्त्रियोंके बैठनेके कमरेसे पश्चिम ओरवाली बेंच पर बैठे थे ?

सर्वनाश ! मनुष्य कहीं डिटेक्टिव तो नहीं है ? मैंने कहा-" हाँ "।

हरिश बाबूने कहा—उस स्थान पर तो केवल बिस्कुटोंका यह डिब्बा पड़ा हुआ था और जब आपने स्टेशनमें प्रवेश किया था उस समय भी मैंने आपके पास कुछ नहीं देखा था।

मुझको अपनी खोई हुई चीजको हरिश बाबूके हाथमें देखकर जितनी तसल्ली हुई थी उससे अधिक दुःख इस बातसे हुआ कि हरिश बाबूने मुझे झूठा जान लिया। मैंने सोचा कि इन्होंने तो मेरी सचाईकी मात्राको जान ही लिया, तब अब और सब यात्रियोंके सामने क्यों अपनी किरकिरी कराऊँ? इस लिए उनसे सप्रतिभ भावसे कहा शायद! तब उन सबको घर ही भूल आया होऊँगा। लड़केकी बीमारीके मारे चित्त ठिकाने नहीं है।

अधिक क्या कहूँ—मैं अविवाहित हूँ। मैंने सोचा कि जीके ठिकाने न होनेकी ऐसी कैफियत देनेके पीछे लड़केकी पीड़ा और बाबाकी गंगायात्रा आदिका हाल कहना अति आवश्यक है। इसके पीछे शेष पथ कल्पित लड़केके माधुर्य, उसके लाड़--प्यारकी विशेषता, उसकी माताकी परवाही, उसके ऐबके कारणके निर्णय और चिकित्सा करनेवालेकी समालोचना आदिमें कट गया। वैद्यनाथमें उतरनेसे पहले मैं हरिश बाबूका ट्रामका पैसा देना नहीं भूला।

(२)

उस दिन श्रापशायर रेजिमेंटके गोरोंके साथ कलकत्ता क्लबकी फुटबाल---की मैच थी। इस लिए मैदान लोगोंसे भरा था। उस दिन मुझको आफिससे समयसे पहले ही अवकाश मिलगया। इस लिए पैसे खर्च करके मिट्टीके तेलके पीपोंपर खड़े होनेकी जरूरत नहीं पड़ी। मैं रस्सीके सहारे ठीक सामने ही खड़ा था। मेरे साथ मेरे आफिसका एक अप्रेंटिस छोकरा भी था। उसका नाम मणिचन्द था। हम दोनों बातें

करते करते मूँगफली खाते जारहे थे और खेल होनेकी बाट जोह रहे थे। कुछ लोगोंने मानो केवल मेरी विकृत कार्यावली देखनेहीके लिए जन्म लिया है। भली गाड़ीमें चढ़कर चले जाओ तो सिर फोड़-लेनेपर भी ये लोग नहीं मिलेंगे। सुस्वादु चव्य, चोष्य, लेह्य, और पेयके संस्पर्शसे जीभको तृप्त करो तो ये लोग तुम्हारे रसोई घरसे कोसों दूर रहेंगे, पर यदि वर्षाके जलसे प्लावित और कीचड़भरी कलकत्ताकी सड़कपर अर्धनग्न और जूता हाथमें लेकर जाते होओगे तो ये लोग चारों ओरसे आकर घेर लेंगे और तुम्हें संकटमें डालदेंगे। हरिश बाबू भी उसी श्रेणीके पुरुष हैं। तब मूँगफली खाते समय उनके मिलजानेमें आश्चर्य ही क्या है?

हरिश बाबू बोले—कहो आशु बाबू प्रसन्न तो हो; अच्छा, लड़का कैसे है? मैंने सप्रतिभ भावसे उनको कुछ फलियें दीं। माणिचन्द बोला—किसका पुत्र? मैंने उसके शरीरको दाबकर हरिश बाबूसे कहा—आपके आशिर्वादसे लड़का अच्छा है।

हरिश बाबूने कहा—आशु बाबू व्यस्त होनेका कोई कारण नहीं है। मैं आपको खूब जानता हूँ। आपको एक संवाद देना आवश्यक था, इसीसे आपको खोज रहा था। क्या खेल समाप्त होजाने पर मेरे घर चलिएगा?

एक बार सन्देह हुआ कि कहीं वारंट तो नहीं है। बहुत गवेषणा करने पर देखा कि अपने जीवनभरमें जान बूझ कर मैंने अपने अति-रिक्त और किसीकी कोई हानि तो की नहीं है। इस लिए हरिश बाबूके साथ जानेमें जीको कोई दुविधा नहीं हुई।

हरिश बाबूके रहनेका घर बहुत साफ सुथरा था। बिछौने पर कुछ कपड़े पड़े थे। उनको हटाकर बाबूने मुझको बैठनेकी जगह दी। उनके

आदेशसे उनका नौकर जगुआ दो पात्रोंमें चा आकर देगया। मैंने हाथ बढ़ाकर कांचका प्याला लेलिया और स्वयं हरिश बाबू कलई उड़े हुए इनामेलके गिलासमें चाय पीने लगे। फुटबालके खेलकी प्रतिद्वन्द्विता, वर्षा, और म्युनिसिपलिटीकी सड़कोंकी सफाईके संस्कारों पर क्षणिक वादानुवादके पीछे हरिश बाबू बोले—"क्या आप अपने गाँवके ... .बाबूको जानते हैं?"

मैंने कहा,........बाबूको जानता हूँ। उनके घरानेसे हमारी विशेष घनिष्ठता थी।

हरिश बाबू कुछ हँसकर बोले—"........की कन्या सुकुमारीको जानते हो?"

वास्तवमें हरिश बाबूने मुझको संकटहीमें डालनेको जन्म लिया है। मेरे लिए सुकुमारीका नाम मोहिनी शक्ति मंडित था और मैं इस बातमें बहुत सतर्क रहता था कि कोई यह न जानने पावे कि सुकुमारीके नामसे मेरा कोई संबंध रहा है। उस नामके विषयमें एक साथ मुझसे जिज्ञासा की गई, इस लिए मुझको उनपर आंतरिक क्रोध हुआ। मुझको इस बातमें अब अणुमात्र संदेह नहीं रहगया कि हरिश बाबू निहायत अभद्र पराई चर्चा करनेवाले हैं।—यह कैसी भयानक बेअ-दबी है!

मैंने अन्य मनस्कताका बहाना करके कहा—हाँ, पहचानता हूँ—क्यों? अच्छा आपके मुहल्लेमें क्या सब भले आदमी ही रहते हैं? आप इस घरमें कबसे हैं?

हरिश बाबूने कहा—बात दाबनेसे क्या होता है? क्या यह जानते हो कि वह कहाँ ब्याही गई है?

मैंने बनावटी कोप दिखाकर कहा—आप क्या कहते हैं ? क्या एक भले मानुसकी लड़कीकी चर्चा करते हुए यहाँ चाय पीना पूरी अभद्रता और सुरुचिविरुद्ध नहीं है ?

इस बार हरिश बाबू कुछ अप्रतिभसे हुए। उन्होंने कहा—और यदि उसीकी अनुमतिके अनुसार आपसे कोई बात कहनेके लिए इस बातकी अवतारणा करता होऊँ ?

मैं एकाएक उनके मुँहको देखने लगा। सोचा कि बंगालमें सात करोड़ मनुष्योंके रहते हुए सुकुमारी इन्हींको अपने विषयकी बात कहनेकी अनुमति क्यों देने लगी ? सुकुमारीके विवाहके दिन मैं........ बाबूके घर निमंत्रणमें नहीं गया था। इस कारण मैं सुकुमारीके पतिको नहीं देख पाया था; किन्तु मैंने सुन रक्खा था कि उसका नाम अविनाश है। क्या हरिश बाबू ही सुकुमारीके स्वामी हैं ? मेरी दो एक संकटकी दशाओंको देखलेनेसे हरिश बाबूने मेरे ऊपर एक प्रकारका आधिपत्य पालिया था। इस लिए यह संदेह मनमें स्थान नहीं कर पाया कि हरिश बाबू ही सुकुमारीके स्वामी हैं। सुकुमारीका जो स्वामी है वह तो मेरा....अच्छा इन बातोंको जाने दो। वह निस्सन्देह एक हीन चरित्र कुरूप पुरुष है। और यह बात मैंने सुनी भी थी। यदि ऐसा न होता तो........बाबू पछताते ही क्यों ?

हरिश बाबूने कहा—क्यों, इतना विचार क्यों हो रहा है ? सुकुमारीका स्वामी अविनाश मेरा जातिभाई है। हम दोनों एक ही गाँवमें रहते हैं।

मैंने कहा—हो, अच्छी बात है।

वे बोले—अच्छी बात है ? मेरी स्त्रीने बड़ा आग्रह करके मुझको भेजा है; यह पढ़ देखो।

हरिश बाबूने मेरे हाथमें एक चिट्ठी देदी। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि एक शक्तिके बलसे उन्होंने मुझ पर अधिकार सा जमा रक्खा था। इस लिए मैं मंत्रमुग्धकी भाँति उसको पढ़ने लगा।

[२]

मैंने पच्चीस ही वर्षके जीवनमें देखलिया कि भगवान्‌ने मनुष्यके सुख-दुःखकी मात्राको सदाके लिए ही बराबर बना दिया है। बालकपनहीसे मुझमें बुद्धिकी इतनी प्रखरता नहीं थी, वरन् तिसपर भी मुझमें आत्माभिमानका अंश कुछ अधिक था। मैंने देख रक्खा था ज्यों ही मेरे हृदयमें कोई व्यथा उत्पन्न हुई त्यों ही सृष्टिकर्त्ता प्रजापतिके आशीर्वादसे कोई न कोई सिद्धि आकर मेरे जीवनके मार्गको उज्वल कर दिया करती थी। लिखना पढ़ना छोड़ते ही मैंने कामधंधेमें लगनेकी विशेष चेष्टा की। एक बार यह जानकर कि एक सज्जनकी देखरेखमें एक क्लर्कीकी जगह है मैं सिफारिशकी चिट्ठी लेकर उनके पास गया। उन्होंने बड़े आग्रहसे पूछा कि—क्या मेरे आफिसमें जगह खाली है? क्या बता सकते हो कि कौनसे विभागमें है? उनके मुखके भावको देखकर बहुत ही आशा बँधी और उनसे मैंने बड़ी नम्रतासे कहा—जी, यह तो नहीं बतला सकता।

उन्होंने अप्रसन्न होकर कहा—बाबू, तब आये क्या करनेके लिए हो? मेरा जमाई खाली बैठा है, तुम बतला देते तो उस जगह उसको बहाल कर देता।

मैं उनकी सौजन्यता पर मोहित हो गया। प्राणके आवेगमें मैंने उनसे कहा—श्रीमान् मैं कलको पता लगा लाऊँगा और आपको आपके जमाईके संबंधमें खबर दूँगा। उस दिनसे मैं फिर किसीके द्वार पर नहीं गया। जब और एक मनुष्यके जीवनका श्रोतपरिवर्त्तन हुआ

और उससे मेरा जीवन हलाहलपूर्ण हो गया, तब सामान्य चेष्टाहार्से मुझको एक नौकरी मिलगई। उस दु:खके समयमें मुझे इस सामान्य सुखसे भी कुछ शांति हुई।

अब बहुत दिनों पीछे हरिश बाबूकी स्त्रीके पत्रको पढ़कर मनमें तुषानलका धुआँ उठने लगा। उससे मेरा श्वास रुकने लगा। मैंने सोचा कि यह तो होना ही था। दो जनोंकी वासनाको कुचल डालने और एक सूत्रमें बँधे हुए दो हृदयोंको वर्वरकी भाँति आसुरी शक्तिसे काट डालनेसे समाजमें इसी प्रकारके विप्लव उत्पन्न हुआ करते हैं। हा मूर्ख पिता! बी. ए. पास जमाईके साथ कन्याको ब्याह देकर तूने उसको जन्मभरको सुखी बनानेकी चेष्टा की थी। तूने मरु भूमिकी तपती हुई बालूमें कुसुमकुंज लगानेकी व्यवस्था की थी। यह समुद्रके रेतेमें अट्टालिका निर्माण करनेकी वासना थी। यह कैसा पागलपन और कैसा कुसंस्कार था! सुकुमारीके साथ उस समय........बाबू यदि मेरा विवाह कर देते, तो हम दोनोंको इस प्रकारसे सदाके लिए दु:खसागरमें नहीं डूबना पड़ता। हरिश बाबूकी दी हुई चिट्ठीको मैं बार बार पढ़ता था। उनकी स्त्रीने लिखा था—"अविनाश देवरकी बहू मर गई। वह रोज दो पहरको मेरे घरमें घूमती है और उसके देशका आशु नामवाला कोई मनुष्य है उसकी बातें कर करके मेरे कान खाये डालती है। मुझसे कहती है—जिठानी, क्या अँगरेज भले नहीं हैं? वे जिसको चाहते हैं उससे ब्याह कर सकते हैं। हम अभागिनी बंगालीके घर क्यों हुई? मैं हँसकर कहती हूँ— "अभागिनी, तुम किस लिए अपने जीमें इस नरकको रक्खे बैठी हो?" वह कहती है—

"मेरा नरक यहीं है। यह श्वशुरका घर नहीं यमका घर है।"—इत्यादि।

जब इस संवादसे मेरे मनमें तुमुल्युद्ध हो रहा था तब ही एका-एक मेरी पदोन्नति हुई। मुझको एक साथ पचास रुपये महीना वेतन पानेकी आज्ञा मिली। इससे मनको एक शांति हुई सही, किन्तु उसी क्षण विधाता पर क्रोध हुआ। मैंने सोचा कि यदि तीन वर्ष पूर्व इस प्रकारसे नौकर होता तो क्या........बाबू मेरी उपेक्षा करके बी. ए. पास अविनाशके साथ कन्याको ब्याह देते। शायद अविनाश बी. एल. में पढ़ता था। इस बातसे भी मेरा कुछ आश्वासन हुआ कि वह ठीक मेरी ही भाँति धन उपार्जन नहीं करता। मैंने सोचा कि हरिश बाबूकी मार्फत यह संवाद सुकुमारीको भेजना ही चाहिए।

[४]

माँने कहा—अब तो तुझको कोई और आपत्ति नहीं है ?

मैंने कहा—कहो मा! काहेकी आपत्तिको पूछती हो ?

स्नेहमयी माँने कहा—छिः आशु, ऐसी बातें क्यों करता है ? बंगालीके घरमें २५ वर्षकी अवस्थाका क्वाँरा लड़का रहनेसे लोग निन्दा करते हैं, अब तो पचास रुपये महीना मिलते हैं, तब फिर सोच विचार काहेका ? ब्याह करो और संसारी बनो।

मैंने कहा—क्यों माता, बड़े भाइयोंके बच्चे भी तो मेरे हैं। तब फिर संसारमें अभाव ही किस बातका है ? वे सब भले चंगे रहें, वंशका भला ही भला है।

जिस समय मातासे मेरी इस प्रकार बातचीत हो रही थी उसी समय मँझली भावज आगई। उन्होंने कहा—माँजी भी ऐसी ही हैं जो उनसे तर्क करने लग गई। तीन चार वर्ष पहले जब...बाबूकी लड़कीके साथ ब्याह होनेकी बातें हुई थीं तब तो कोई उजर किया ही नहीं

था। क्या तब लल्ला आदमी नहीं थे। अब कलकत्तेमें रहकर थियेटर देखे, साहब मेम देखे, और तमाम बातें हुईं। अब उनसे पूछनेकी आवश्यकता ही क्या है। कल हम लड़कीको देखनेको जा ही रही हैं। लड़कीको ढूँढ़नेवालियोंके तो ढूँढ़ते ढूँढ़ते पैर छिल गये।

भावजकी इस सैनिक विधिकी कार्यप्रणालीसे मैं अप्रसन्न चाहे जितना हुआ होऊँ, पर सोचा यही कि हमारे दादाको इसी बुद्धिसे चलना होगा और इस लिए बंगाली जातिकी वर्त्तमान अवस्था, विना परिणाम सोचे हुए विवाह कर डालनेके कुफल, और लड़कीके ब्याहके संबंधके समाजके अत्याचार, प्रभृति अनेक विषयों पर वक्तृता देकर मैं स्टेशनकी ओरको चल पड़ा।

वैद्यनाथ स्टेशन पर गाड़ीमें चढ़ते ही जो देखा तो हरिश बाबू दिखाई दिये।

उन्होंने कहा—वाह, विना बादलोंके दर्शनहीके जल! क्या आशु बाबू, शनिवारको घर गये थे?

मैंने सम्मतिसूचक गर्दन हिलाई।

उन्होंने कहा—कहो काम काज कैसा चलता है?

मैंने कहा—हाँ, चलरहा है, अभी हालमें कुछ उन्नति हुई है। अब मुझे ५०) मिलने लगे हैं।

हरिश बाबूने बड़ा आनंद प्रकाशित किया। आज कलके बाजारमें ५०) मासिक उपार्जन करलेना साधारण काम नहीं है यह बात भी उन्होंने समझी। मैंने पूछा कि अविनाश बाबू क्या कर रहे हैं?

उन्होंने हँसकर कहा—भला वह करेंगे ही क्या? पिछली वार बी. एल. में फेल होगये थे, अब इस वार भी उसीकी चेष्टा कर रहे हैं। और बी. एल. पास भी हो गये तो क्या होगा? आप तो जानते ही हैं।

मैं हँसा वह भी हँस दिये। मेरी हँसी ईर्ष्या पूर्ण थी। जो मनुष्य मेरे मुखके ग्रासको निकाल लेजाकर मेरे जीवनभरकी शांतिको हर लेगया था उसकी और क्या भलाई हो सकती थी।

हरिश बाबूने कहा— आशु बाबू आपने इतने दिनों तक विवाह क्यों नहीं किया?

मैंने कहा—कोई ठीक मीजान नहीं लगा।

उन्होंने कहा—जब अविनाशका विवाह हुआ था तब उनकी स्त्रीकी अवस्था कितनी थी?

मैंने कहा—मैं क्या जानूँ?

उन्होंने कहा—हाँ तुम क्यों जानने लगे? बारह ही तेरह वर्षकी होगी, क्यों न?

मैंने कहा—हो सकती है।

हरिश बाबूने कहा—देखो साहब लोग फिर भी कहते हैं कि बंगालियोंके जीवनमें Romance (रंगीलापन) नहीं होता है। जिस देशमें बारह वर्षकी नायिकाके लिए एक बुद्धिमान् मनुष्य जीवनभर कुँआरा रह सकता है उस देशका रोमेन्स या रंगीलापन क्या सामान्य है?

यह बात मुझको बहुत ही असह्य हुई। ठीक उसी समय ट्रेन कोन्नगरमें पहुँचकर रुक गई। हमारा एक साथी यात्री एक थैला उठाकर और अँगोछेमें बँधे हुए दो एक अधमैले कपड़ोंको लेकर उतरगया। मैं भी उसीके साथ उतरने लगा।

हरिश बाबूने मेरा हाथ पकड़कर कहा—क्यों महाशय, कहाँ जाते हो?

मैंने कहा—मैं यहीं उतारूँगा।

हरिश बाबूने कहा—वाह सो क्यों? अभी तो कहा था कि कलकत्ता जाना है।

मैंने कहा—हाँ, कहा तो जरूर था किन्तु मैं यहीं उतरूँगा।

हरिश बाबू एक व्यंगपूर्ण हँसी हँसकर और रूमालको गलेमें डालकर हाथ जोड़कर बोले—मुझसे नाराज हो गये? अच्छा क्षमा कीजिए अब उस बातको नहीं कहूँगा।

उनकी भक्तिसे मुझे हँसी आगई। हारकर और भी कई मिनिटों तक उन्हींके साथ बैठना पड़ा।

[५]

उस दिन कालीघाटमें अधिक भीड़ नहीं थी। माताके मन्दिरके बीचमें एक ब्रह्मचारी गाना गा रहा था और उसके चारों ओर स्त्रीपुरुष और लड़के लड़कियाँ घिरे बैठे उसके संगीत सुधासे तृप्त हो रहे थे। मैं भी दर्शन करके लौटकर वहीं गाना सुननेको बैठ गया।

मेरे सामने एक घूँघटके बीचमेंसे दो शंका चकित नेत्र मेरे मुखकी ओरको ताक रहे थे। उन दोनों नेत्रोंके प्रथम दर्शनसे ही मेर शरीरमें बिजली दौड़ गई। मैं भी उन्हीं दो आँखोंको देखने लगा। वे दोनों आँखें नीचेको हो गई। मैंने भी दृष्टि मोड़ ली। जब फिर उस घूँघटवालीको देखा तब वह भी इधरहीको देख रही थी। मैंने फिर आँखें उठाईं, उसने दृष्टि नीची कर ली।

मैंने विचारा कि इस जगह क्या करना चाहिए? असहाय निर्जीवकी भाँति इस जलती हुई अग्निमें जलता रहूँ या शिखाके पाससे हटकर हृदय शीतल करूँ? यही तो मैं कर रहा था। सोचा कि यह शिखा तो क्षणभर ठहरनेवाली है—इसके बुझते ही दारुण अंधकार आकर हृदयको घेर लेगा।

काँपते हुए शरीरसे उस स्थानको त्याग कर माताके मंदिरमें गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—"माँ! इस झंझटसे बचाओ। इस पापकी चिन्ताका अंत करो। यह व्यापार आज ही समाप्त हो जाय।" बालकपनके क्रीड़ाओंके चित्र आकर हृदयमें चमकने लगे। वे बीते हुए चित्र बड़े ही शांत और बड़े ही मधुर थे। आँखोंसे देखनेसे माताका अभय देनेवाला हाथ दिखाई दिया। माताकी लोलरसनाकी आश्वासन देनेवाली वाणीका शब्द सुना। वह कह रही थीं—"हृदयको दृढ़ करो और सुविधा होने पर सुकुमारीको खूब समझा दो कि अब इस जीवनमें और कोई आशा नहीं है व्यर्थ मेरे लिए शोच करके क्यों मरती है?"

मैंने सोचा कि यदि वह यह पूछ बैठी कि तुम्हीं तो मेरी चिन्तामें पड़े हो? फिर अभय देनेवालीकी मूर्त्तिको देखा—वह कह रही थी, "वह पूछ बैठेगी, इस बातको छोड़ दो।"

सुकुमारीसे इस सामान्य बातको कहनेका मैं अवसर ढूँढ़ने लगा। दोनों पैर बलहीन होते जा रहे थे और हृदय जोरसे चल रहा था। इतने दिनों तक जिस परस्त्रीको हृदयके भीतरके कोनेमें बैठा कर पूजा करता रहा था, आज उसीसे बातचीत करना पड़ेगी, इस बातकी भावना करके मैं बहुत ही विचलित हो रहा था। फिर गानेहीकी जगह पर मैं लौट आया।

एक प्रौढ़ा स्त्रीने सुकुमारी तथा एक और स्त्रीसे कुछ कहा, जिससे वे उठ बैठीं। जाते समय उसकी एक अर्थहीन दृष्टि मुझ पर भी पड़ी। मैं भी मंत्रमें बँधे हुए की भाँति पीछे पीछे चल दिया।

हृदयके आकाश में बड़े जोरका झटका लग रहा था उस अस्फुट ध्वनिमें केवल दो स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। एक स्वर कहता था—छिः छिः कैसा जघन्य आचरण है! देवमंदिरके पास में ऐसा होना

कैसा कुत्सित व्यापार है! यह कैसे पापका अनुष्ठान है! कुत्तेकी भाँति पराई स्त्रीके पीछे चल पड़ना क्या भलमनसाहतकी बात है? दूसरा स्वर इन बातोंकी अपेक्षा और अधिक उच्च कण्ठसे कह रहा था—इसमें कोई पाप नहीं है। केवल एक मुहूर्त्तमें एक बात कह दूँगा, तब इसमें भला पापकी क्या बात है?

मैं दूर रहता हुआ ही पीछे चल रहा था, इस लिए स्त्रियाँ मुझको नहीं देख पाई। उन्होंने नकुलेश्वर देवके पासकी दूकानसे जल लेकर मन्दिरमें प्रवेश किया।

मंदिरमें दर्शनार्थी लोग दिखाई दे रहे थे:। मैं इस मन्दिरमें नहीं गया। पासके एक वृक्षके नीचे बैठकर उनके आनेकी राह देखने लगा। क्रमसे एक एक यात्री बाहर आने लगा। मैं जो सुविधा खोजता था, अंतमें वह हाथ आगई। सुकुमारी महादेवको जल चढ़ाकर बाहर आई। उसकी दोनों संगवाली स्त्रियाँ नहीं दिखाई दीं। मैं धीरे धीरे खिसक कर उसके पास पहुँचा। शरीरमें भूकम्प केसे झटके लग रहे थे। मुझे एक साथ बात कहना थी। ओंठ सूख जानेसे शब्द नहीं निकलता था। सुकुमारीने मेरी ओरको देखा। मार्गमें कितने ही लोग निकलते जा रहे थे। सब अपने अपने कार्यमें व्यस्त थे, किसीने मेरी ओर नहीं देखा। मैंने बड़े कष्टसे कहा—सुकुमारी अच्छी हो!

सुकुमारीने सरल और परिचित कण्ठमें कहा—क्यों क्या हाल है? कहो घर गये थे, सब कोई राजी खुशी हैं?

मुझे साहस हुआ। मैंने उत्तेजित भावसे कहा—और सब तो अच्छे हैं ही। तुम्हारा संवाद मुझको हरिश बाबूसे मिलजाता है।

सुकुमारीने पूछा—हरिश बाबू कौन?

मैंने कहा—छिः सुकुमारी, क्या यह मज़ाकका समय है! यह तीन वर्ष किस यातनासे काटे हैं, इस बातको कैसे कहूँ? हर रोज तुम्हारी चिन्ता और तुम्हारे ही ध्यान—

भूतको देखकर मनुष्य जैसे चौंक पड़ता है वैसे ही सुकुमारी चौंक उठी। मेरे पाससे दूर हटजाकर बोली—छिः छिः भाई आशु, तुम्हारा इतना अधःपतन कब हो गया? पहले तो तुम गाँवमें एक आदर्श बालक थे। कहीं नशा तो नहीं खा आये हो? न जाने मेरे मुखकी क्या अवस्था हो गई थी। मैंने कंपित कंठसे कहा—सुकुमारी! ठीक उसी समय उसकी संगिनें मन्दिरसे निकल आईं। दौड़कर सुकुमारी मन्दिरकी ओरको गई। जिस प्रौढ़ाका हाल ऊपर लि[illegible] चुक[illegible] उसका हाथ पकड़कर सुकुमारीने कहा—

“माँ, कहाँ चली गई थीं देखो, देखो, मेरे देशका एक लड़का नशा खाकर क्या बक रहा है।”

यह बात मुझको स्पष्ट रूपसे सुन पड़ी थी। मेरे पैरोंके नीचेसे पृथ्वी निकल गई। हृदय थर थर काँपने लगा, माथा घूमने लगा, मैं उसी मार्गमें मूर्छित हो कर गिर पड़ा।

[६]

जब धीरे धीरे फिर स्वाभाविक ज्ञान फिरा तब आँखें मीचे हुए मेरे सुननेमें आया कि कोई कह रहा था—छिः सुकुमारी, यह संदेह तुम्हारी भूल है। मैं इन कई महीनोंसे इन पर विशेष लक्ष्य रखता रहा हूँ। आशु बाबू बड़े सच्चरित्र हैं।

दूसरे कण्ठने कहा—तब फिर आज ऐसा क्यों किया?

पहलेने कुछ हँसकर उत्तर दिया—यह मेरे पापसे हुआ। यह सब बात तुझे फिर बतलाऊंगा। बहुत ही मृदु और मन्द वायु मेरे मस्त-

कको स्पर्श कर रहा था। धीरे धीरे आँखें खोलकर देखा—पंखा झल-नेवाली सुकुमारी थी। सिरहानेको हरिश बाबू बैठे थे।

ऐं, फिर हरिश! प्रतारक, जालिया, मिथ्यावादी और वंचक हरिश पर क्रोध आया। उसी दुर्बल शरीरसे मैं उठने लगा! कालीघाटकी उस छोटीसी कुटीके अस्पष्ट उजालेमें सब ही बातें स्वप्नसी जान पड़ती थीं।

हरिशने कहा—"स्थिर होओ।" सुकुमारी कमरेसे बाहर चली गई। मैंने कहा—"नहीं स्थिर नहीं होऊँगा। मुझको यहाँ कौन लाया? इतनी शैतानी! ऐसी प्रतारणा!"

हरिशने कहा—मेरी सब बात तो सुन लेओ, तब दोष देना।

मैंने कहा—नहीं हरि बाबू मुझे छोड़ो।

हरिशने कहा—हरिश बाबू नहीं अविनाश कहो।

मैंने स्वप्न देखकर उठे हुए मनुष्यकी भाँति उनकी ओरको देखा और कहा—"क्या मामला है। क्या आरंभसे अंत तक धोखा ही धोखा है?"

हरिश बाबूने कहा—आशु बाबू मुझको क्षमा करना। मेरी स्त्री विवाह होने पर यहाँ तक कि आज तक प्रायः तुम्हारी प्रशंसा किया करती थी। तुम्हारे देशकी बातें कहती थी और तुम्हारी माँके प्रति बड़ी श्रद्धा दिखाया करती थी। इस सबसे मेरे जीको बड़ा सन्देह होता था। मैं सोचता था कि स्त्री दुश्चरित्रा जान पड़ती है। इसी लिए आपके पाससे बात जाननेके लिए व्यस्त होकर मैंने कुछ धोखेबाजी की थी।

मैंने पहले यही समझा कि सब व्यापार निर्दोष है किन्तु मेरी पहि-चान पूरी नहीं उतरी। तुम्हारे मनमें पाप था—"

मैंने उनकी ओरको क्रोधसे लाल हुई आँखोंसे देखा। उन्होंने कहा—क्षमा करो। मैं आजकी कोई बात जानता नहीं था। एक साथ माता

इत्यादिको विलम्ब होनेसे ढूँढ़ने आने पर देखा कि आप मार्गमें मूर्छित पड़े थे। उठाकर ले आया और स्त्रीसे सब बात सुनी। जानते हो कि सुनकर क्या धारणा हुई?

मैंने उत्तेजित होकर कहा—अपनी धारणाको लिए हुए बैठे रहो—

हरिशने कहा—"मेरी धारणा है कि तुम कापुरुष हो, तुमने तीर्थ स्थल पर पराई स्त्री—जो कुछ भी वह कहनेको थे उसको समझ कर मैंने जल्दीसे वह स्थान छोड़ दिया। और मनमें प्रतिज्ञा की कि अब ऐसी निर्बुद्धिताका कार्य आगेको जीवनभर नहीं करूँगा कि जिससे मार्गमें मूर्छित होना पड़े। उसी रात्रिको मैं वैद्यनाथको चला गया।

इसके बाद जो शुभ दिन सबसे पहले आया उसीको मेरा विवाह हो गया। अब मेरा जीवन बहुत ही सुखमय है। हाँ, जब कहीं हरिश बाबूका पता चलता है तब बहुत दूरको भाग जाता हूँ और विना बिचारे केवल मानसिक उत्तेजनाके वेगसे मार्गमें कोई कार्य नहीं कर बैठता हूँ।

सुधा।

(१)

चन्द्रमाकी सफेद किरणोंसे शांत रात्रिमें नीला आकाश अपूर्व शोभा धारण कर रहा था। वह होलीका दिन था। मधुर वसन्तमें दिशाओंको कंपित करता हुआ पपीहा प्राणभरके गा रहा था। फूलोंकी सुगंधिसे सब दिशायें आमोदित हो रही थीं। अकेले सूने कोनेमें बैठ कर शशी-शेखर सोच रहा था—"मैंने कैसा अन्यायका कार्य किया?"

ऊपर शैलका तैल चित्र था। ऊपरको दृष्टि करके शशीशेखर कहने लगा—"शैल, अब भी तुझको जीसे भुला नहीं पाया हूँ। यह भी

मनमें सोच नहीं पाता हूँ कि इस जन्ममें भूलूँगा। सदा जिस प्रकारसे पूजा करता रहा हूँ शेष जीवन भर भी वैसे ही पूजता रहूँगा। उसके बाद—उसके बाद क्या तू मुझको अपने पास बुलालेगी? तैल चित्र मुखसे कुछ कहे बिना ही उसकी ओरको देखता रहा। उस दृष्टिमें तिरस्कारकी कठोरता नहीं थी और न तानेकी मीठी मुस्कुराहट ही थी। वह दृष्टि स्थिर और अचञ्चल थी, किन्तु उसमें कोई अज्ञात करुणाका भाव पूर्णमात्रामें विराज रहा था। शशिशेखर उस दृष्टिका अर्थ समझ गया। वह ऊँचे कंठसे बोल उठा—"शैल, तू मुझको व्यर्थ दोष देती है; मैंने अपनी इच्छासे ब्याह नहीं किया था। माताने अपना हठ पूरा किया, "किन्तु तुझको मेरे अन्त:करणसे दूर नहीं कर सकीं। मेरे भीतरबाहर तूही है। इस हृदयमें सुधाको तिल मात्र भी स्थान नहीं है।"

फिर कोमल मधुर कंठसे कोई बोल उठा—"प्रियतम, मैं आई।"

घरमें चन्द्रमाका उजाला था—मधुर ज्योत्स्नासे पुकारनेवालीका सारा शरीर और मुखमंडल दिखाई दे रहा था।

शेखरका विचार टूटा और उसने पीछेको फिर कर निर्दोष कान्तिवाली रमणी मूर्त्ति देखी। देखते ही कहने लगा, "सुधा, तू यहाँ कैसी आई? माँ के पास जा।"

सुधाने आँखें नीचे करके बहुत धीरेसे कहा—"प्रभो, आजभरके लिए अपराधिनीको क्षमा कर दीजिए, आज होलिकाका दिन है। आज मेरी भी इच्छा पूर्ण हो जाने दीजिए। मुझको आप प्राय: ही पैरसे हटाते रहे हैं यही समझ कर आजकी भिक्षा पूरी होने दीजिए।"

शेखर चुप रहा। तब सुधाने अपने हाथके अबीर कुंकुमसे उसके दोनों पैरोंको रँग दिया। बहुत दिनों पीछे सुधा स्वामीके पैरोंतले पड़-

गई, फिर अंतमें कहने लगी, "हृदयदेवता, मेरी पूजा पूरी हो गई। अब मैं जाती हूँ।" सुधा चली गई। शेखर ऊपरको टकटकी बाँधे अटल अचल बैठा रहा।

(२)

इसक पीछे कितने ही दिन बीत गये। कितनी ही निद्राहीन रातें चली गई। शशिशेखरके हृदयका न दबनेवाला वेग किसी भी तरह शांत नहीं हुआ। कितनी ही मुँहसे विना कही हुई प्रार्थनाओं और कातर आँखोंसे उसका हृदय नहीं पिघला। बस एक ही चिंता और एक ही भावनासे उसका शरीर जीर्ण होने लगा। जितने दिन भी शेखरसे बन पड़ा वह चुपचाप सहता रहा। इसके बाद जब यातना असह्य हो गई तब एक दिन रातको वह प्रयागकी ओरको चल पड़ा।

उन दिनोंमें कुंभका मेला था। कितने ही यात्री और कितने ही संन्यासी वहाँ आये हुए थे। इस महातीर्थका स्नान अनगिनती दूकानोंकी श्रेणीसे छा गया था। गंगा यमुनाका संगम है। यमुनाका काला जल गंगाके सफेद जलमें मिल गया है। यह दृश्य बहुत ही सुन्दर और बहुत ही मनोहर था।

पहले कई दिन तो शेखरके किसी तरह कट गये। नये स्थान पर नये दृश्य देखकर किसका जी नहीं लग जाता है? शेखरने बहुतसे साधु संन्यासियोंके साथ मिलकर और अनेक स्थानोंको देख—घूमकर एक प्रकारसे मनको ठहराया। किन्तु यह स्थिरता कै दिन ठहरनेवाली थी? कुछ दिन पीछे मनकी अवस्था फिर पहलेहीकी जैसी हो गई। जिसकी प्यास केवल मायाकी है, उसको भला कहीं शांति मिलती है? शशिशेखर अस्थिर चित्त होकर देशविदेशमें फिरने लगा।

(३)

सुधाने सोचा कि इतने दिन हो गये, एक बार फिर उनके दर्शन मिलजाते ! सुधाकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी । उस तैल-चित्रके सामने खड़ी होकर सुधा कहने लगी, "बहिन, जगतमें तुम्हारी सी भाग्यवती धन्य है ! तुमने पतिका प्रेम पाया था, मैं हतभागिनी तुम्हारे धनको हरलेनेका प्रयास करती हूँ ।" सुधा रुक नहीं सकी । नेत्रोंके जलसे उसकी छाती भीग गई । उसने काँपते हुए कंठसे कहा, "बहिन, मैं तुम्हारी वस्तु लेना नहीं चाहती, मैं केवल पूजा करना चाहती हूँ । क्या मेरी अभिलाषा पूरी नहीं होगी ?" इतनेहीमें पीछेसे ननदने पुकारा, "बहू, क्यों रोती है ?" आँचलसे आँखें पोंछ कर सुधाने कहा, "मनमें जितने कष्ट हैं उनको कैसे जताऊँ ? मनुष्य होनेसे अभी तक जीती हूँ, पेड़ पत्थर होती तो इतने दिनोंमें फट पड़ी होती । क्या उनकी खबर मिलनेका कोई उपाय नहीं है ?" शिवानीने धीरेसे उसके मुखको उठाकर कहा—"बहू सोच करती करती क्या पागल हो जायगी ? चलो दिन भर हुआ कुछ खाया नहीं है—थोड़ासा खा लो । भाईकी खबर आई है, अब वे वृन्दावनमें हैं ।" उत्तेजित स्वरमें सुधाने कहा, "तुम माँजीसे कह दो, मैं उनको देखने जाऊँगी ।" शिवानी बोली, "बहू तू जरूर पागल हो गई है, दो दिन पीछे तो दादा आ ही जावेंगे ।"

सुधाने फिर भी कहा, "नहीं बहिन, वह ऐसे कभी नहीं आवेंगे। चलो मैं उनको लौटा ले आऊँ ।"

"अच्छा चल, यही होगा, मैं अभी रविसे कहूँगी ।"

रवि शशिशेखरका छोटा भाई है । सुधा नाम मात्रको खानेके लिए बैठ गई । स्वामीके विरहमें सती भूख प्यास रहित हो रही थी ।

इस लंबे वियोगसे उसकी अति उज्वलकांति कुछ मन्द हो गई थी। देहलता सूखती जा रही थी। पुत्रके शोकसे आतुर सास बोली—"बहू तू इतना शोच क्यों कर रही है? चल मैं तुझको वृन्दावन ले चलूँ।। चल मैं भी अन्तिम जीवनमें श्रीगोविन्दके दर्शन कर लूँगी।"

तब शिवानी कहने लगी, "माँ, चलो तब फिर हम सब ही रविको साथ लेकर दादाके खोजनेको चलें। इसका भी ठिकाना नहीं है कि फिर किधरको चल पड़ें; बहू भी सोच करते करते पागल सी हो गई है।"

सबकी वृंदावन जानेकी ठहर गई। उसी दिन संध्याको सब रवि-शेखरके साथ पुण्यतीर्थ श्रीवृंदावनधामको चल दिये। जिस घरमें रात दिन चहल पहल रहती थी आज वही घोर निस्तब्धतामें बदल गया।

[४]

नीले जलवाली स्वच्छ यमुना चुप बहती जा रही थी। हाय, आज बाँसुरीका वह शब्द नहीं है जिससे कि यमुना फूली हुई बहती थी; जिस बांसुरीके स्वरसे घरमें रहनेवाली गोपियोंका मन उदास होता था। हाय यमुना, तुम्हारे किनारेवाला वह बाँसुरीका स्वर अब आज कहाँ चला गया? अरे, आज वह राधारानी कहाँ हैं! वृंदावन आज भी तुममें सब कुछ है—बस वह मोहनमुरली ही नहीं है। तुम्हारा सुंदर कलेवर तो रहगया है बस प्राण नहीं है। यमुना क्या तुम उसीके विरहमें सूखगई हो? भला कौन कह सकता है कि कितनी गोपियोंके आँसु-ओंकी गर्म धारें तुममें मिलीं हैं!

वृंदावनके किनारे पर तमालका बन है। इस बनका दृश्य बड़ा ही मनोहर है। मयूरनीका सुंदर नाच इस वनकी शोभा सौगुनी कर देता है। इसी बनके बीचमें एक कुटीमें दो संन्यासी बातचीत कर रहे थे।

अच्युतानन्दने कहा–"बेटा, तुम घरको लौट जाओ। कठोर कर्त्तव्य तो अब भी तुम्हारे सामने पड़ा हुआ है। अभी कर्मयोगका पालन करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है, ज्ञानयोगमें तुम्हारा अधिकार नहीं है।"

दूसरा संन्यासी बोला, "प्रभु, घर पर मुझको शांति नहीं मिलती है। मैं ज्ञानद्वारा शांति लाभ करना चाहता हूँ।"

अच्युतानन्द गोस्वामीने हँसकर कहा, "बेटा, आँखें मूँद कर देखो, अभी तुम्हारे सामने कितना बड़ा कर्तव्य पड़ा है। पुत्रके शोकसे व्याकुल माता सन्तानके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई सड़क पर आँखें लगाये है। लंबे विरहसे कातर, पतिमें प्राण लगाये रहनेवाली सती स्वामीके दर्शन करनेकी लालसासे जीवन धारण किये हुए है। बेटा, अन्धे न बनो, तुम्हारी सब वासनायें अभी प्रबल ही हैं, जाओ गृहस्थीके धर्मको पालो। मनको शांति हो जायगी।"

इस बातको कहकर महापुरुष प्रस्थान कर गये। शशिशेखर ध्यानमें आँखें मूँदे हुए, अनेक चिंतायें करता हुआ बैठा रहा।

(५)

असलमें घरसे बाहर निकलनेके बादसे शशिशेखरका मन और भी अधिक अस्थिर हो गया था। वह शांतिकी आशासे जितनी दूर भी जाता था उसको प्राणके भीतर उतना ही किसीका अभावसा जान पड़ता था। शांतिकी आशासे शशिशेखर कठोर आत्मसंयमका अभ्यास करने लगा था, किन्तु ऐसा कर नहीं पाता था,

हृदयमें एक स्थान सूना था और उस सूने स्थानमें कोई अधिकार करनेकी चेष्टासी करता था। शेखर निद्रामें स्वप्न देखता था कि कोई आँसुओंसे उसके दोनों पैरोंको धो रहा है—कितने ही मना करने पर भी मानता नहीं है—पैरों पड़ कर कितनी ही साधना करता है।

शेखर उठाना चाहता था किन्तु उठा नहीं पाता था, क्योंकि कोई उसको हाथ पकड़ कर रोक लेता था। वृन्दावनमें जानेसे शेखर पागलसा हो गया था, उसकी हृदयकी ज्वाला और भी बढ़ने लगी थी। इसीलिए अच्युतानंद गोस्वामीके पास आकर उसने शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। इसके पीछे उसको कितनी शांति हुई थी सो पाठक जान ही गये हैं। आज सारे दिनभरकी थकावटके बाद शेखरको घोर निद्राने घेर लिया; किन्तु निद्रासे भी उसके मनको शांति नहीं मिली।

शेखरने एक विचित्र स्वप्न देखा।

* * * *

शैलने कहा—प्यारे, इस प्रकार अशांतिमें कितने दिनोंतक पड़े रहोगे ? सुधाको लेकर सुखी होओ।

शेखरने कहा—"शैल! तुझे छोड़कर सुखी कैसे हो पाऊँगा ?"

शैल बोली—"रमणी स्वार्थपर नहीं होती हैं। मैं मर भले ही गई हूँ किन्तु तुमको असुखी नहीं होने दूँगी। इसी लिए तुमको सुधाके हाथों सौंप दिया है।"

शैल अदृश्य हो गई। किन्तु फिर वही दृश्य! कोई उसके दोनों पैरोंको नयनोंके अश्रुओंसे धोने लगा—जाने कितने प्रेमके साथमें पैरोंमें लोटने लगा। शशिशेखर चौंक पड़ा और चिल्लाकर बोला—"सुधा, सुधा!" उसकी नींद जाती रही। उसने देखा कि वास्तवमें कोई उसके दोनों पैरोंको आँसुओंसे सींचकर चुप चाप चलागया है।

[६]

चिन्ता ही चिन्तामें शशिशेखरका शरीर गलने लगा। उसको विषमज्वर चढ़ा। अच्युतानन्दस्वामी उसकी सेवा करने लगे। उसको उस अवस्थामें देखकर उसकी माता और पत्नी चिन्तित न हों, यह सम-

झकर फिर उन्होंने उन दोनोंको कुछ जानने नहीं दिया । जब बादमें ज्वरका कोप बराबर बढ़ता ही गया तब वे उनको लानेको लाचार हो गये ।

पतिमें प्राण लगाये रहनेवाली सुधा पैंताने बैठी रहकर दिनरात उसकी सेवामें लगी रहने लगी । आहार और निद्रा छोड़कर साध्वी-सती गोविन्दके चरणारविंदमें प्रार्थना करती थी–"प्रभु, मेरे स्वामीकी रक्षा करो । " कितनी ही रातें चुपचाप बीत गईं; शशि शेखरकी अवस्था नहीं सँभली । विकारके घोर प्रलापमें वह बकता था " शैल, अब मेरा अन्त आगया । मुझे अपने पास बुलाले । " माता और सुधा मुखसे शब्द निकाले विना आँसू बहा रहीं थीं । अच्युतानन्दने कहा " तुम लोग अधीर न होओ । इससे रोगीकी अवस्था और भी बिगड़ जायगी " बड़े कष्टसे उन बेचारियोंने अपने आपको रोका, किन्तु जी नहीं मानता था । शेखरकी दशा क्रमसे बिगड़ती ही गई । जब कुछ भला माल्रम होता था, तब सुधाके मुखकी ओर एक टक देखता रहता था । एक दिन चिल्ला उठा—" शैल मैं आगया । चल प्राणेश्वरी, मैं और तू दोनों हाथ पकड़ कर अनन्त धामके मार्ग पर चले जावें । हमें कोई रोक नहीं पावेगा ।" सुधा निदारुण शोक और नीरव यातनासे रोपड़ी । जान पड़ता है कि उस रोनेसे शेखरको ज्ञान हुआ।

शेखरने कहा, " सुधा, तू रोती है ! रो मत । अपने तप्त आँसुओंसे मेरे हृदयको जलावे मत । मुझको जाने दे । इस जीवनमें तो मैं तुझसे मिल नहीं पाया, किन्तु मरने बाद जीवन होगा तो फिर हमारा मिलना होगा और इस जीवन बाद तुझको और शैलको लेकर सुखी होऊँगा । " शेखर चुपहो रहा । रोती हुई सुधा पास ही मूर्छित होकर गिर पड़ी ।

(७)

अनेक दिन विना खाये और अनेक रातें विना सोये रहनेकी थकावटसे सुधाकी देहलता निर्जीव सी होगई थी। सुधाकी यह मूर्छा तो भंग हो गई, किन्तु उसको समय समय पर ऐसी ही मूर्छा होने लगी। शशिशेखरकी व्याधिने एक दिन प्रबल मूर्ति धारण की। अच्युतानन्दने कहा, " माता जीको स्थिर करो। आज तुम्हारी भीषण परीक्षाका दिन है। गोविन्दके चरणोंमें आत्मसमर्पण करो।" शोकमें बावली होकर माता बड़े जोरसे रोने लगी। रोनेसे शेखरको होश हुआ। उसने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—" माँ रोओ नहीं, कृतघ्न पुत्रको क्षमा करो। अपनी पदधूलि दो और आशीर्वाद करो। मेरा काल पूरा होगया मैं चला।" घोर विकारके प्रकोपमें शेखरने देखा कि अंगुलीके संकेतसे शैल उसको पुकारती है। यह देखकर वह चिल्ला उठा—

" शैल मैं आता हूँ। उसी दिन रातको शेखरका प्राणपक्षी पिंजरे-मेंसे निकलकर अनेक धामके पथ पर उड़गया। बालिकासुधा पतिके चरणप्रांतमें मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

* * * *

इसके बाद वृन्दावनमें कई दिन बीत गये। माता और सुधाने वृंदा-वनमें अच्युतानंदके आश्रमको नहीं छोड़ा। शेखरकी माताने वास्तवमें ही गोविंदपदमें आत्मसमर्पण करदिया। इस आत्मसमर्पणहीसे वे इस दारुण पुत्रशोकको जीत सकीं। जब मनुष्यका चित्त खिंचकर भगवा-नसे जा लगता है तब संसारी शोक उसको व्याकुल नहीं कर पाता है। और बालिकासुधा ? हाय, हाय! भला इस कनक अंगमें सफेद वस्त्र कहीं शोभा पाते हैं? यह दृश्य हृदयको चीर डालनेवाला है। संसारकी ओरसे विराग होता है।

सुधा प्रतिक्षण अपने जीवनके अन्तिम दिनकी प्रतीक्षा करती और कहती थी—

मिलना सबका होय है, वैतरणीके पार।
वहीं आपसे मिलूँगी, बैठी उसी किनार॥
इसी आशाको हृदय रख, रही मैं जीमें फूल।
किन्तु वहाँ भी इस तरह, रहना मुझे न भूल॥

सुधाने जान लिया था कि प्रेम अविनश्वर है। मृत्युके पीछे प्रेमका विच्छेद नहीं होता और प्रेमका अनन्त मिलन होता है। वह ऊपरको देख कर बोल उठती थी "हे हृदय देवता, चिरवाञ्छित, बहुत दूर होने पर भी तुम मेरे अन्तःकरणसे दूर नहीं हो। इस हृदयमन्दिरमें सदैव तुम्हारी पूजा करूँगी। मेरा और कोई देवता नहीं है। तुम्ही मेरे देवता हो। यदि साधना की जय होती है, तो जीवनके अंतमें फिर तुमसे मिलना होगा। हे प्रिय, उस समय तुम मुझको अपने पैरोंसे न हटाना!"

चित्र रहस्य।

उस साल मैं बी. ए. की परीक्षामें पास हुआ था। बाबाके लाख सिर मारने और बहुत धन व्यय करने पर भी माता भारती का मेर बड़े भाईके साथ वैसा सद्भाव नहीं उत्पन्न हुआ था। इस लिए मुझे बी. ए. पास करते देखकर पिता आनन्दसे खिल उठे। उन्होंने कहा, "मैं तो बराबर कहता था कि रमेशकी बुद्धि बड़ी प्रखर है।" जो लोग मेरे नामके साथमें 'दुष्ट, मन चाही करने वाला, अवाध्य' प्रभृति सुललित और मधुर विशेषण जोड़ा करते थे वे भी आज प्राण खोलकर मेरी प्रशंसा करने लगे। और मैं यह भी नहीं कहना चाहता हूँ कि मेरे

चित्तमें एक नई प्रसन्नता आकर हृदयके भीतर तकको झकोरे नहीं देदेती थी। अवसर मिलते ही मैं अकेलेमें बैठकर अँगरेजी और बंगालीमें छोटे बड़े नाना विधिके अक्षरोंमें 'रमेशचन्द्र दत्तसेन, बी. ए— इस प्रकारसे अपना नाम लिखकर देखता था और अपने बड़प्पनको समझता था। एक और खूब छिपी हुई बात भी है जो कि मैंने किसीसे कही ही नहीं। उन दिनोंमें मेरा जो कोई भी मित्र या परिचित मनुष्य कहीं था उसीको मैंने बिना आवश्यकता पत्र लिख डाला। इसका उद्देश्य यह था कि उत्तर देते समय वह सिर नामे में 'रमेश चन्द्रसेन बी. ए.' लिखकर मेरे हर्षको अवश्य ही बढ़ावेगा। किन्तु भाग्य दोषसे कोई तो पत्रका उत्तर देते ही नहीं थे और जिन्होंने उत्तर दिया उनमें-से बहुतेरोंने भी बी. ए. उपाधिको बाद देकर उत्तर दिया।

अच्छा इसे छोड़ो। मैं इस परीक्षाके फलसे पिताका बहुत ही चहीता हो गया। मेरे क्रिकेट और फुटबाल आदि खेल पिताजीकी दृष्टिमें अब दोष ही समझे जाने लगे। दादा बड़े ही शिष्ट, शांत और सरल प्रकृतिके पुरुष थे। एक दिन आदर करते हुए कहने लगे— रमेश! भाई अब तुझको मेरी भाँति खजाञ्चीगीरी करते हुए जीवन नही बिताना पड़ेगा। बाबा तुझको अवश्य ही डिपुटी मजिस्टेट बनवा देंगे।

उन दिनोंमें मुझको डिपुटीगीरीका कोई बड़ा चाव नहीं था। मेरा लोभ तो एक फोटोग्राफ केमराका था। मैंने दादासे कहा, "दादा, बाबासे कहकर एक फोटो खींचनेका केमरा न मुझको मोल दिलवादो।

दादाने कहा—भला इसकी ऐसी क्या बात है? बाबासे कह न दे।

मैंने कहा—नहीं भाई तुम ही कहो। मुझे बड़ी लज्जा आती है; क्योंकि अभी उस दिन मैं बाइसिकिल मोल लेचुका हूँ।

दादाने कहा—हाँ यह तो ठीक है ।

अन्तमें बड़ी देर तक दादासे सलाह करने पर यह ठहरा कि बाबाके सामने यह प्रस्ताव भावज द्वारा पेश कराया जाय । बाबासे डरते तो सब ही थे; किन्तु फिर भी भाभी औरोंकी अपेक्षा किसी भी प्रस्तावको अधिक साहससे उपस्थित कर देती थीं । भावजने थोड़ी देर टाल मटूल करके कहा—" यदि बाबा बुरा भला कहने लगे ? "

मैंने कहा " भाभी, भला बाबाकी बातका क्या बुरा मानना ? "

भाभी बोलीं—" यदि ऐसा ही है, तो तुम स्वयं ही क्यों नहीं कहलेते हो ?" इस तरह थोड़ेसे वादानुवादके पीछे वे कहनेको राजी हो गईं । मैं आनंदित मनसे बाइसिकिल पर बैठ कर चल दिया ।

[२]

उन दिनों मैं एक प्रकारसे फोटोग्राफी सीख चुका था और सब प्रकारके चित्रोंको बड़ी चतुरतासे बना सकता था । एक दिन दोपहर ढले मैं बाइसिकिलकी सहायतासे माणिकतलाके खोलेको पार करके पक्के रास्ते पर सीधा पूर्वको चल दिया । रास्तेके बंगलोंके बाग बहुत ही रमणीयकान्ति धारण किए थे । इस लिए रास्तेकी थकावट नहीं चढ़ी ।

कुछ आगे बढ़ने पर एक और खोलेकी धार मिली । कौतूहल परवश होकर बाँधके ऊपरके एक बड़े बटवृक्षके तले गाड़ीको टेंक कर मैं स्वयं भी वहीं पर बैठ गया । वह दृश्य बहुत ही शांति देने वालासा जान पड़ने लगा । खोलेके दूसरी पार रुके हुए जलसे भरी एक बहुत बड़ी झील थी । मैंने देखा कि सब ओर स्थिर और शांत जलकी राशि है । कहीं पर भी कोई लहर नहीं दिखाई देती थी । फिर जलहीके बीचमें दो एक झोपड़े भी दिखाई दे दिये । इससे मैंने

सोचा कि शायद वर्षाके जलकी धारने मैदानको प्लावित करके चिर-भाग्य हीन और दरिद्री कृषकोंका सर्व नाशकर डाला है। मुझ जैसे आमोदप्रिय और विना दायित्ववाले युवकोंकी आँखोंको अच्छे लगने वाले दृश्य अवश्य ही कितने ही हत भाग्य लोगोंके शोकके आँसुओंके सिंचे हुए होते हैं।

मैं पूरा शहरवाला लड़का हूँ! कलकत्तेसे बाहर बहुत ही कम गया हूँ! उस जलराशिके असली हालको जानेनेके लिए मुझको बहुत ही कौतूहल हुआ। मैंने पास ही खोले पर एक नावमें कई एक स्त्रियोंको घूँघट काढ़े खड़े हुए देखा। उन सबकी कमर और सिर पर मिट्टीके एकहीसे वड़े थे। वहाँसे उठ कर मैंने मांझीसे पूछा उस पार काहेका जल है माँझी?

माँझीने कहा—"वह 'बादा' है बाबू 'बादा'—"

मैंने कहा "बादा क्या?"

उसने मुझको जो समझाया उसका अभिप्राय यह था कि जल-पूर्ण नीची भूमि। कुटियें धीवरोंकी थीं। वे उस जलमें मछलियें पैदा करके रोजगार चलाते थे। बादामें जल खारी था, इस लिए धीवरियें पीनेका जल इस पारसे आकर लेजाती थीं।

उस दिन उस स्थानके सब ही पदार्थ मुझको सुन्दर समझ पड़ रहे थे। नावमें बैठी हुई और कलसियोंको कांखमें दबाये हुए जो धीवर ललनायें थीं वे मेरे यौवनोत्साहपूर्णहृदयमें पौराणिक भावको विशेष रूपसे उकसा रही थीं। उन स्त्रियोंने मेरे चित्तमें वृन्दावनकी गोपबा-लाओंकी कथाको स्मरण करा दिया। वह निर्जनसुदृश्य स्थान कोला-हलपूर्ण नगरकी अपेक्षा अधिक मनोरमसा लगने लगा। मैंने मनमें

स्थिर किया कि कल केमरा लेजाकर इस स्थलके दो एक दृश्योंको अवश्य उतारूँगा ।

मेरी फोटोग्राफी विद्याका गुरु प्रबोध था । दूसरे दिन उसको उस जगह लेजानेकी मैंने बड़ी चेष्टा की । उसने कहा—"ऐसे पागल तुम ही हो, जो बादा या धापाके मैदानमें ऐसी धूपमें छवि लेने जाते हो !" वह मेरे साथ जानेको राजी नहीं हुआ, तब मैं अकेला ही उस कड़ी धूपमें झुलसता हुआ वहाँ जा पहुँचा । किन्तु यह आश्चर्यकी बात है कि उसदिन वहाँ प्रकृतिके मुख पर वह लावण्यपूर्ण मधुर हँसी नहीं थी । उस समय प्रचण्ड घामसे समस्त पृथ्वी झुलसी जा रही थी, इस लिए खोलेपरकी नाव पर वे धीवरी रूपिणी गोपबालायें नहीं दीख पड़ीं और जलमें उनके चित्रके प्रतिफलित होनेसे जो सौन्दर्य उत्पन्न होता था उसके उपभोग करनेकी मेरी वृत्ति चरितार्थ नहीं हुई । इस लिए वहाँकी कुटियोंकी ही एक छवि लेकर वट वृक्षके नीचे कुछ विश्राम करनेके लिए मैं बैठगया ।

[३]

छवि लेलेनेके पीछे जब मैं घरको फिरने लगा, तब रास्तेमें प्रकाश मिलगया । उसने कहा—"क्यों रमेश ! तुम्हारा मुख सूखा क्यों है ? वह हाथमें क्या है ? "

मैंने कुछ हँसकर कहा—अरे, भाई ! यह क्यों पूंछते हो ? एक ग्रहदशामें फँसकर आज व्यर्थ ही बड़ा कष्ट भोगा ।

प्रकाशने कहा—" आओ, आओ, मेरे घर थोड़ासा विश्राम कर लो।"

मैं बहुत ही प्यासा था; इस लिए उसके निमंत्रणको मैंने आनन्द-पूर्वक स्वीकार करलिया । हम दोनों पुराने संगके पढ़े हुए मित्र जिस समय परस्पर अपने अपने सुखदुःखकी बातें कहनेमें लगे हुए थे, उसी

समय एक साथ प्रकाशके पिता यहाँ आगये । इधर उधरकी कुछ बातचीत करके वह प्रकाशको संग बुला लेगये । जल्द ही लौटकर प्रकाशने मुझसे पूछा—' रमेश, क्या तुम्हारे केमरामें प्लेट लगा है ? "

मैंने कहा, " हाँ, एक प्लेट है तो । क्यों, क्या तुम्हारे सुन्दर मुखकी एक छबि लेलूँ ? "

प्रकाश बोला—नहीं यह उद्देश बिलकुल नहीं है । मेरी छोटी बहिनके विवाहका संबन्ध होनेको है । वर पक्षवालोंने उसकी एक छबि मँगवाई है । यदि इस समय तुमहीसे कार्य बन जाय, तो और कष्ट नहीं करना पड़े । पिताजी इसी लिए मुझको पुकार कर ले गये थे ।

मैंने कहा—" वाह, यह कितनीसी बात है ? जाओ जल्द टीकठाक करो । उजेला चले जाने पर चित्र अच्छा नहीं आवेगा ।

मैं उनकी छत पर एक सुभीतेके स्थान पर चित्र लेनेका आयोजन करने लगा । जाड़ेकी एक काली चादरसे पीछेकी एक प्राचीरको मैंने बंद कर दिया और प्रकाशसे कहा कि छतपरकी दीवालमेंसे दो एक बेलें उखाड़ लेआओ ।

प्रकाशने कहा—"छतपरके बेल और फूल सब सूखेपड़े हैं नीचेसे थोड़ेसे पामके झाड़ लेआताहूँ । " मुझसे जितना भी होसका स्थानको सुन्दर करलिया और उससे कहा कि अब जाकर अपनी बहिनको ले आओ ।

उसकी बहिन आई । लड़की देखनेमें बुरी नहीं थी । वह अपने बड़ेबड़े और सरल नेत्रोंसे केमराकी ओर देखती हुई और कोमल होठोंके कोने पर कुछ मुस्कुराती हुई वहाँ आकर उपस्थित हुई ।

---

१ प्रायः सुन्दर बागोंमें खजूरकेसे पत्तोंवाले जो विलायती वृक्ष होते हैं, उन्हें पाम कहते हैं ।

उसकी उजली श्यामवर्णवाली देह एक रेशमी वस्त्र से ढकी हुई थी। यदि उसका वर्ण और अधिक उजला होता, तो वह बड़ी सुन्दर स्त्रियोंमें गिनी जासकती थी। इस लिए मैंने यह स्थिर किया कि इसका चित्र इस ढंग से दूँगा की जिससे इसका रंग गोरा समझ पड़े। उसका वेश और विन्यास भी मुझको कुछ ऐसा दृष्टिसुखकर नहीं जान पड़ा।

मैंने प्रकाशसे कहा—"अपनी बहिनके कंधेसे वस्त्रके अंचलको उठाकर कुछ अंशको पृथ्वी पर गिरजानेदो। ऐसा होनेसे वेश सुन्दर दिखाई देने लगेगा।"

प्रकाशने कहा–जैसा चाहो वैसा सँभाल न लो। ऊषा अभी लड़की है। तो भाई पोशाककी सजावटका तो मुझे कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। तब मुझको ही वेश विन्यासमें अपने हाथसे संस्कार करना पड़ा। प्राय: बारह वर्षकी होजाने पर भी ऊषाके चालचलनमें बचपनकी सिधाई और माधुरी झलकती थी। यदि ईश्वरने उसको चंपाके फूलकासा रंग और देदिया होता तो लड़की बड़ी ही सुन्दरी और लावण्यवती होती।

[४]

मुझको अब भी भली भाँतिसे स्मरण है कि उस दिन १२ तारीख और कार्तिकके कृष्णपक्षकी तीज थी। संध्या होगई थी। यह बात भली भाँतिसे समझमें आरही थी कि शहर पूरा पूरा निस्तब्ध और कोलाहल शून्य न होने पर भी एक दिव्यशान्तभाव आकर क्रमसे प्रकृतिके ऊपर आधिपत्य जमानेकी चेष्टा कर रहा है। मैं घरमें बैठा हुआ खुले हुए हवादानमें होकर आकाशके सौन्दर्यको देख रहा था। मेरी गोदमें एक पुस्तक थी और हाथमें ऊषाका एक चित्र था। उसदिन आकाश कैसे सुन्दर और हृदयके प्रफुल्लित करनेवाले मनोहर साजोंसे सजाहुआ था। श्याम वर्णके असीम विस्तारके बीचमें असंख्य चमकते

हुए उजले तारोंकी राशिसे घिराहुआ नवीन चन्द्रमा मुसकुराता हुआ पृथ्वी पर अमृत बरसा रहाथा। कलकत्तेके ऊँचे कोठें पर जो आकाश दीपक बँधे थे वे आकाशके नीचे एक हीनप्रभ तारिकाओंके समूह जैसे जान पड़ते थे। इसमें संदेह ही नहीं है कि उस ज्योत्स्नामयी (चन्द्र) विमानके नीचे वह मनुष्योंकी सजाई हुई दीपावली वास्तविक ताराओंकी शोभाको बढ़ा रही थी।

मैं बाहर आकाशकी ओरको देख रहा था और बीच बीचमें अपने हाथवाली किशोरी मूर्तिको भी देखता जाता था। उस मूर्तिके असली मांस गठित आदर्श पर लट्टू होकर या उस चित्रकी आदर्श मूर्तिको स्मरण करनेके लिए ही उस फोटो चित्रको मैंने अपने हाथमें ले रक्खा था सोबात नहीं है। अपने मित्र प्रकाशचन्द्रकी अनूढ़ा बहिन पर मेरी कोई औपन्यासिक आसक्ति नहीं उत्पन्न हुई थी और न ऊषाके ऊपर मेरे हृदयकी कोमल वृत्तियें हीं पड़ी थीं। मेरा प्रेम हो गया था उस फोटोके चित्रसे। अपने हाथसे लगाये हुए वृक्षके बढ़नेसे जैसे नयनोंको आनंद होता है वैसे ही ऊषाका चित्र मेरी दृष्टिको सुख देने लगा। अपने हाथसे शिवलिंग बनाकर पूजा करनेसे जैसे भक्तको एक नये प्रकारका आनन्द होता है मेरी भी ऊषाके चित्र पर वैसी ही आसक्ति पैदा हो गई थी। यदि मैं उसकी ओढ़नीके आँचलको पृथ्वी पर नहीं लटका देता, बालिकाकी कुंचित केशराशिको यदि कंघीसे मैंने आसपासको न फैला दिया होता और यदि अपनी कारीगरीके सूर्यके उजालेको मुखपर प्रतिफलित करके उस श्याम वर्णके मुखके चित्रको श्वेत न बना दिया होता तो ऐसा सुन्दर और मनोरम चित्र कभी नहीं हो पाता।

जिस समय मैं अपनी प्रशंसा इस प्रकारसे करके आत्म प्रसाद लाभ कर रहा था उसी समय भाभी धीरे धीरे आकर और मेरे पीछे

खड़ी होकर ऊषाके चित्रको देख रही थीं। मैंने जो ध्यान दूसरी ओर करनेके लिए पीछेको दृष्टि फेरी तो देखा कि भावज खड़ी हैं!

भाभी मृदु और मन्द मुस्कुराहटसे बोलीं—"क्यों देवर, यह छवि किसकी है?" कुछ अप्रस्तुत रहने पर भी आत्मगोपनकी चेष्टा करनेके लिए मैंने चित्र भाईकी पत्नीके हाथमें अर्पण कर दिया और गर्व पूर्वक कहा 'भाभी, देखो देखो चित्र कैसा है!"

चित्रकी उत्तम रूपसे परीक्षा करके भाभी बोलीं--"यह चित्र है किसका!"

मैंने कहा "इस बातसे क्या? छवि कैसी है?"

भाभी बोलीं "लड़की तो बहुत ही सुन्दर है। क्यों है या नहीं। मैंने कहा कि 'तुमसे इस मतामतकी जिज्ञासा नहीं की जाती है कि लड़की का चेहरा सुंदर है या कुरूप, तुमसे तो यही पूछा जारहा है कि फोटो कैसा खिंचा है।

अब भावजके रोके हँसी नहीं रुक सकी। हँसकर बोलीं "अच्छा ऐसा ही सही। अब यह तो बतलाओ कि यह लड़की है कौन?"

मैं बड़े चक्करमें पड़ा। ऐसा जान पड़ रहा था कि मैं मन्त्रके बलसे उनकी क्षमताके अधीन होता चला जारहा था। मैं यह भी समझ रहा था कि चित्रके संबंधमें कोई भी बात छिपानेसे भाभीकी क्षमता मुझपर दूनी हो जायगी। इससे उनको ऊषाका परिचय दिया।

उन्होंने पूछा कि लड़कीका नाम क्या है?

मैंने कहा—"ऊषा"

'अवस्था'!

"अन्दाजसे ग्यारह बारह वर्षकी होगी।"

" चित्र मैं लिए जाती हूँ " ।

मैंने हाथ फैला कर कहा—" वाह ! तुम चित्रको लेजाकर करोगी क्या ! "

भाभी हँस कर बोलीं—" और कुँवारे लड़के होकर एक कुँवारी लड़कीकी छबिको रख कर तुम्हीं क्या करोगे । "

बात ठीक थी, किन्तु उस चित्रको छोड़ देने की भी रत्ती भर इच्छा नहीं थी । इस लिए मैंने सोचा कि इसका निगेटिव तो मेरे पास ही है अभी दूसरी और छाप लूँगा । भाभी हँसती हुई उस छबिको लेगई मेरे जी में एक भीषण तर्क उठा । क्या एक दूसरे घरानेकी कुँवारी कन्याकी छबि लेकर संध्याके आकाशकी ओरको देखते हुए बैठना यह क्या कुछ अनुचित कार्य हो गया ? सामने आँख जाने पर मैंने देखा कि एक फानूस आकाशमें उतराता हुआ चला आरहा था । जब-तक फानूस दृष्टिसे बाहर नहीं चला गया तब तक मैं बराबर उसीकी गतिको देखता रहा । मैंने सोचा कि शायद भावज अपने जीमें यह समझेंगी कि ऊषाके सौन्दर्यने रमेशके हृदय पर अधिकार कर लिया है । बड़ी भूल मुझसे होगई । मैंने उनसे कह क्यों न दिया कि ऊषाका असली रंग काला है, केवल मेरी कारीगरीहीसे चित्रांकित ऊषाका रंग सुन्दर सा दीख पड़ता है ।

[५]

उस दिन 'श्यामा-पूजा' थी । दादा सौदागरी आफिसमें खजा-ञ्चीका काम करते थे । इस लिए और दिनोंमें उनको नौ बजेके भीतर ही दो पहरके भोजनको समाप्त कर लेना पड़ता था । आज छुट्टीका दिन था, संभवतः और दिनोंके प्रातःकाल ही भोजन कर डालनेके कष्टका बदला लेलेनेके लिए दोपहरका समय बीत जानेपर भी स्नानादि किसी

काममें भी वे आग्रह नहीं दिखलाते थे । वे उस समय तक बैठकमें बैठे हुए ' अर्चना ' हीको पढ़ रहे थे और पिताजीके साथमें किसी विषयमें गूढ़ परामर्श कर रहे थे। पिताजीकी प्रकृति स्वभावहीसे गंभीर थी किंतु फिर भी वे मामलेकी बातोंमें दादाको शरीक करके उनको सम्मानित करते थे । उनके दरबारमें मैं बहुत ही कम जाता था । माताहीन बालक प्रायः पिताहीसे बड़ा प्रेम रखते हैं, किंतु मेरी प्रकृति और प्रकारकी थी । उन दिनोंमें मेरी परीक्षा पास आगई थी । इस लिए मैं पासके कमरेमें बैठकर विश्व विद्यालयकी निर्वाचित पाठ्यपुस्तकोंसे घनिष्ठता करनेकी चेष्टा कर रहा था । अचानक दादाने मुझको बुलाया । मेरे कमरेमें प्रवेश करते ही पिताजी अन्यत्र चले गये।

दादाने पूछा—" प्रकाशका घर कहाँपर है ? "

मैंने उनको ठीक ठाक बतलादिया । किंतु मुझको कुछ विस्मय भी हुआ कि इस प्रश्नका तात्पर्य क्या है ?

उन्होंने पूछा—" प्रकाशके पिता क्या करते हैं ? "

मैंने कहा—" वे हाइकोर्टके वकील हैं । उनका नाम—बाबू है ।

उन्होंने कहा—" ओह, वे तो बड़े नामी वकील हैं । "

मैंने पूछा—" क्यों दादा, उनके विषयमें आप इतनी पूछताछ क्यों करते हैं ? "

दादा बोले, " इस बातको जानकर तू क्या करेगा ? "

सब मामला मार्केका समझ पड़ने लगा । मनमें संदेह हुआ कि भाभीहीने उस छबिको लेकर एक काण्ड खड़ा कर दिया है । किंतु प्रकटमें चित्रकी कोई भी बात मैं नहीं कह सका । भली भाँतिसे देखनेपर मुझको देखनेमें आया कि दादाके अधरके सिरेपर कुछ हँसी छिपी हुई थी ।

भैया दोयजके दिन भाईके साले अवनी निमंत्रणमें आये। अवस्थामें मेरी अपेक्षा कम होनेपर भी साले होनेके कारणसे वे मुझसे हँसी ठठोली करते थे। थोड़ी देर बातचीत करके अवनी बोले— रमेश बाबू, आपके 'रोमेंटिक लाभ' की सब बातें मैंने सुनीं। यह ठीक ही है, आजकलके बाजारमें अपना 'पार्टनर' (जोड़ा) आप ही ठीक कर लेना अच्छा है।

अब मुझको तिलभर भी संदेह नहीं रहा। मैंने जान लिया कि छबिवाली बात महिलामस्तिष्ककी उर्वरतासे इतनी दूरतक फैल गई है। उसकी भ्रांत धारणाको दूर कर देनेकी मैंने उचित चेष्टा की, किन्तु किसी भाँति भी उसके उस विश्वासको मैं तोड़ न सका।

उस दिनसे एक विषम भावना मेरे हृदयको हिलाने लगी। इस बातको सबको कैसे समझाऊँ कि ऊषा पर मेरी आसक्ति नहीं है! भद्रताके कारणसे मैं मित्रकी बहिनकी प्रशंसा कर सकता था, किंतु इसी बातसे उसको अपने जीवनकी संगिनी बना लेनेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी। मेरे मनमें तो यह इच्छा थी कि किसी असामान्य रूपवाली कसेहुए काञ्चनवर्णवाली बुद्धि और विद्यावाली ललनाका पाणिग्रहण करूँगा। बन्धुबांधवोंमें दो एक वार इस विषय पर मेरा गवेषणापूर्ण व्याख्यान भी हो चुका था कि आदर्श स्त्री कैसी होती है।

मैंने कल्पनासे जिस आदर्शको हृदयमें चित्रित कर रक्खा था ऊषा उससे कितने ही सीढ़ी नीचे है यह बात सबके सिरमें कैसे प्रवेश कराऊँ। इसका कोई भी उपाय समझमें नहीं आता था। ऊषाके संबंधमें मैं जितना भी विचार करता था वह उतनी ही बुरे रूप और श्रीवाली समझ पड़ती थी। यह तो उसके कपड़े और गहनोंके पहिनावसे ही विदित हो गया था कि वह शिल्पसे अनभिज्ञ है। फिर

भी और सब लोग यही समझ रहे थे कि उसके गुण और रूपमें मैं मोहित हूँ। छिः, छिः मेर कानों तक फैले हुए उज्वल नेत्र द्वय क्या सर्वथा ही दृष्टिहीन हो गये?

[६]

कैसी भ्रांत धारणामें फँसकर घरवाले स्नेहके कारण बड़ी चिन्तासे कार्य कर रहे थे?

मैंने जीसे सोचा कि मुझको इस बातका पता पहले क्यों न लग-गया कि पिताके हृदयमें इतनी उदारता और इतना स्नेह है। भूलसे यह विश्वास हो जाते ही कि मैं एक लड़कीसे प्रेम करता हूँ वे कितनी चिन्तासे कार्य रहे हैं। मैंने विचारा कि इन बातोंमें घरवालोंहीके दोषसे अनेक युवकोंका भविष्य एक वारही दुर्दशापूर्ण बन जाता है कितने ही युवक आत्मसंयम न कर सकने पर पाप करनेकी ओरको झुक पड़ते हैं।

यह विचार कर मेरा जी बड़ा ही व्याकुल हो जाया करता था कि मेरे विषयमें यद्यपि पिताजीका उद्देश्य बहुत ही भला है, तथापि उसका फल विषमय होगा। कभी कभी मैं यह भी सोचता था कि पिताजीका कहना न माननेसे भी क्या होगा। क्योंकि एक न एक दिन विवाह तो करना ही होगा। विवाहित जीवनका संपर्क स्त्रीके रूपसे बहुत थोड़ा ही है। किन्तु ज्यों ही मैं ऊषाकी बात सोचता था त्यों ही उसके रूपके दोष बड़े विराट आकारमें मेरे हृदयके नेत्रोंके सन्मुख आ जाते थे। और यह बात मुझको बड़ी पीड़ा देनेवाली बनगई कि मुझको ऊषाकी दृष्टिमें भी हेय बनना पड़ा। इस लिए उसको केवल शोभा-हीन मानकर भी शांत नहीं हो पाया—मुझे उस पर क्रोध आया और

हिंसाका भाव हुआ। भावज पर भी क्रोध हुआ। मैंने सोचा कि वास्तवमें स्त्रियोंकी बुद्धि प्रलय करनेवाली है।

क्रमसे यह अवस्था हो गई कि इस बातको हृदयमें दाबे रखना असंभव हो गया। पर पिता या दादासे तो इस बातको कह डालनेकी शिक्षा या क्षमता मुझमें थी नहीं। ओहो! वे कैसी भारी भूलकी नींव पर मेरे सुखके महलको बनानेकी चेष्टा कर रहे थे। मेरी कल्पनामें इसका भावी फल भी निर्मल भावसे चमकता दिखाई दे रहा था। मैं जान रहा था कि यह अट्टालिका मेरे ऊपर गिरकर मुझहीको पीस डालेगी।

इस सारे अनिष्टकी जड़ भावजसे मैंने एक दिन कहा, "छिः छिः, भाभी! तुमने कैसा बचपन किया?"

उन्होंने कहा—"क्यों मेरा क्या अपराध है?"

मेरे जीमें बहुत सी बातें उठ रही थीं। इस लिए धैर्य धरकर मैंने उनसे कहा—

क्या मेरे नेत्र नहीं हैं? यदि अपने आप देखकर ही मैं विवाह करूँगा, तो भला प्रकाशकी बहिनके रूप ही पर जाकर क्यों मोहित होऊँगा? तुम सबको रोक देओ। मुझे सदाके लिए विपदमें न फँसा देना।

(७)

एक ही दो बार नहीं मैंने भावजके भ्रांत विश्वासको दूर कर डालनेकी बहुत बार चेष्टा की। वे सोचती थीं कि यह लज्जासे ही ऐसा अनुरोध करता है। असलमें उसके मनका विश्वास वही है जो कि मैं समझी हूँ। मैं बड़े पेंचमें पड़ा। यह बात दादाके कानोंतक पहुँची भी नहीं जान पड़ती थी, क्योंकि बीचबीचमें प्रकाश उनसे मिलता

रहता था । उसकी बहिनसे मुझको जो घृणा हो गई थी, उसका कुछ अंश अब प्रकाश पर भी जा पड़ा ।

अगहनके मासमें मेरी एम. ए. की परीक्षा समाप्त होगई । मनकी अवस्था भली नहीं थी, इस लिए प्रश्नोंके उत्तर भली भाँति नहीं लिखे जा सके । इससे मुझको कुछ अधिक दुःख नहीं हुआ । मैंने सोचा कि जब सारे ही जीवनभर दुःखोंकी बेड़ी पैरोंमें डालकर काँटोंसे भरे हुए मार्गमें जीवनयात्रा करनी पड़ेगी, तब इस एक परीक्षामें पास या फेल हो जानेसे कौनसी बड़ी हानि हुई जाती है ?

एक दिन दादाने कहा, "रमेश, आज कहीं जाना नहीं । संध्याके समय प्रकाशके पिता—बाबू तुमको आशीर्वाद देने आवेंगे ।"

अब मुझको सुविधा हाथ लगी और मैंने कहा—आशीर्वाद कैसा दादा ? क्या मेरा— ।

दादा हँसते हँसते दूसरे स्थानको चले गये । उस समय भी उन्होंने मेरे दुःखको नहीं सुना ।

मैंने विचारा कि इस विषयमें अब उनको आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए । आशीर्वाद हो जाना तो एक प्रकारसे विवाह ही हो जाना है । डूबनेसे पूर्व क्या एक बार तैर कर तट पर निकल जानेकी चेष्टा करना उचित नहीं है ? इस लिए लज्जाको भाड़में डालकर मैं मन्थरगतिसे दादाके कोठे पर पहुँचा ।

खूब साहस करके मैंने दादासे गंभीर भावसे कहा—" दादा, मैं विवाह नहीं करूँगा ।"

दादा कुछ लिख रहे थे । मेरी ओरको मुख करके वे बोले— " अच्छा, न करना । "

उस समय दादाके मुखका भाव देखकर और अपनी लज्जाको छोड़कर मैं सरल स्वाभाविक भाव धारण करनेके लिए हँसदिया दादा भी हँसदिये। जीको रोककर मैंने फिर रूखे भावसे कहा—" नहीं, दादा हँसीकी बात नहीं है। मैं ब्याह नहीं करूँगा।"

दादाने लिखते लिखते कहा, " अच्छा, भाई! मत करो।"

उस समय मेरी लज्जा चली गई थी। सरस्वती स्वयं आकर मेरे कण्ठमें बैठना चाहती थीं। मैंने बड़े आग्रहसे कहा—" नहीं दादा, मैं सच ही कहता हूँ कि विवाह नहीं करूँगा। न मालूम भाभीने एक भूलमें पड़कर तुमसे क्या कह डाला—"

बड़े भाई मुँह उठाकर कुछ मुस्कुराते हुए कहने लगे—" अरे तू क्या मुझको काम नहीं करने देगा? हम लोगोंने इस विषयमें कुछ भी नहीं सोचा है। क्या आज तुझे किसी खेलमें नहीं जाना है?"

मुझे हताश होना पड़ा। मैंने जान लिया कि चेष्टा करना व्यर्थ है विरक्ति, क्लेश और निरुत्साहको सिरपर लाद कर मैं क्रिकेट खेलनेको चला गया।

(८)

ब्रह्माके लिखेहुए विरुद्ध कार्य करना क्षुद्र मनुष्यके लिए असाध्य है। बेचारा प्रबोध वर्षभर परिश्रम करने पर भी परीक्षामें फेल हुआ और सिरपर मुसीबत रहते और हृदयमें दारुण आन्दोलन रहने पर भी मैं परीक्षामें पास हो गया। मैंने विचारा कि विधिलिपि सचमुच अखण्डनीय है। जब हृदयमें असह्य यातना भोगकर भगवान्‌को कातर कण्ठसे पुकारने पर भी विवाहको नहीं रोक सका, तब विचारा कि 'भगवान् तुम्हारे कार्यको समझना मनुष्यके लिए असंभव है।' किन्तु शुभ विवाह हो गया इससे क्या मेरे भीतरकी अग्नि शांति हो गई?

यह सोचकर मैंने विना चूँ किये हुए विवाह तो कर ही लिया कि पिताका अपमान होगा; किन्तु यह किसीको नहीं बतलाया कि प्राणके भीतर कैसा भीषण वृश्चिकदंशन हो रहा था।

जिस दिन परीक्षाका फल प्रकाशित हुआ उस दिन मेरी फूलशय्या थी। मैंने स्थिर किया कि आज भी कुछ गड़बड़ न करके प्राणके भीतरकी अग्निको प्राणके भीतर ही बुझाऊँगा।

दुलहिनके आनेके दिनसे मैंने भीतरके मकानका आना जाना ही छोड़ दिया था। संध्याके बाद कुछ सामाजिक और अपने कुलकी क्रियाओंके करनेके लिए मुझको घरमें जाना पड़ा।

भावज बोलीं—देखा बहूका कैसा भाग्य है! इधर बहू आई, उधर तुमपास हो गये।

यह कैसी भीषण बात थी! क्या मैं बास्तवमें ऐसा अपदार्थ हूँ कि बिना स्त्रीके भाग्यकी सहायता पाये हुए परीक्षामें उत्तीर्ण ही नहीं हो सकता था? फूलोंकी सुगंधसे भरे हुए फूलबासरमें लेटा हुआ मैं यही विचार रहा था। मैं सोचता था कि मेरे पासवाली यह कदर्य और कुश्री स्त्री अपने अशिक्षित और बुद्धिहीन मस्तिष्कमें मुझको कितना हेय समझ रही होगी। यह बात इसने अवश्य ही सुना होगी कि मैं इसके फोटोको लेने जाकर इसके रूप पर मोहित हो गया और स्वयं मैंने ही इसके साथ विवाह करनेका प्रस्ताव किया। ओह, कितनी भयंकर बात है! ऐसी संतोष और आमोदकी बात सुनकर भला किस स्त्रीका स्वाभाविक गर्व दसगुना नहीं बढ़ जायगा? इसके अतिरिक्त जब संध्याको इसने यह सुना होगा कि मेरी एम. ए. की उपाधि मुझको इसीके भाग्यसे प्राप्त हुई है, तब इसने मुझको कितना हेय समझा होगा और अपने आपको कितना बड़ा माना होगा!

कोई आधे घण्टे तक मैं स्थिर पड़ा रहा। तबतक ऊषा सोई नहीं थी। मेरे ही भाग्यके दोषसे जिसका गर्व इतना बढ़ गया था भला वह अब क्यों सोती। उसके अलंकारोंके बजनेकी ध्वनि मुझे सुनाई दे रही थी। अंतमें मुझको मालूम पड़ा कि मेरे कंधेमें किसीका हाथ छुआ। मैं सोते हुए होनेका बहाना करके चुप पड़ा रहा। जान पड़ता है कि ऊषाका हाथ धोखेसे मेरे लग गया था। उसने डरकर हाथको खींच लिया।

इस कोठेकी निस्तब्धता धीरे धीरे मेरी पीड़ाका कारण बनती जाती थी। एम. ए. उपाधि लाभकी संपदाको मैं स्वच्छन्द चित्तसे नहीं भोग सकता था—क्या यह कुछ कम दुर्भाग्यकी बात थी? कभी कभी जीमें आता था कि अपने हृदयके विषोंको पासवाली अपराधिनी पर थूककर उसको असली भेद समझा दूँ। किन्तु वह अवसर निकलगया था। जिस समय उसका हाथ कँधेसे लग गया था, उस समय ये बातें कही जा सकती थीं।

नहीं कह सकता कि ऊषाके जीमें क्या गुजर रही थी। जान पड़ता था कि बहुत अधिक गर्व और मेरे प्रति अश्रद्धा, ये दो भाव उसके हृदयको मथ रहे थे। फिर अवसर हाथ आया। उसका घृणित (?) हाथ फिर मेरे शरीरसे छू गया।

मैंने कहा—"सँभलकर नहीं सोया जाता?"

ऊषा हट गई; मुँहसे कुछ नहीं बोली। मैंने सोचा कि इसको कितना गर्व है।

उसको सिरसे पैरौंतक देखा। गर्वसे सिकुड़कर वह चुपचाप लेटी थी।

मुझे बहुत ही बुरा लगा। मैंने कहा—तेरा गर्व करना भूल है।

उसने धीरे धीरे अस्पष्ट शब्दोंमें कुछ कहा । मैंने उसके मुखके पास कान लेजाकर कहा कि तू क्या कहती है ?'

उसने मेरे मुखकी ओरको नहीं देखा । धीरे धीरे बोली यदि कुछ गलती हो जाती थी, तो बड़ी बहिन कहती थी कि विद्वान् पति मिलनेवाला है, इस कारण तुझको गर्व हो गया है । अब आप भी वही बात कहते हैं । भला मैंने क्या किया है ?

मैं जिस अवसरको खोजता था वह मिलगया । मैंने कहा—क्या किया है ? तूने मेरी जीवनभरकी जोड़ी हुई आशाओंको जला कर भस्म कर दिया; तूने मेरी स्त्री बनकर मेरे जीवनमें हलाहल मिला दिया । सारे घरवालोंने एक भूलमें फँसकर मेरी सब इच्छाओंके अंकुरको नष्ट कर दिया । मैं कैसी अशुभ घड़ीमें तेरी तस्वीर लेने गया था ।

अब मेरे जीमें यह जाननेकी वासना हुई कि इतनी लंबी वक्तृताका श्रोतापर क्या प्रभाव पड़ा । यह नहीं समझमें आया कि ऊषाके शरीरके लक्षणोंसे भय झलकता था या गर्व । उसके रोनेकी धीमी ध्वनि मेरे कानोंमें अस्फुट रूपसे जा रही थी ! तब क्या ऊषा गर्वमें भरी हुई नहीं है ! तब क्या मेरे प्रधानभयका कारण स्वप्नमें देखी हुई प्रेतमूर्त्तिकी भाँति अलीक और केवल कल्पनासे बना हुआ है ? उसके रोनेसे मुझको कुछ दया आई । मैंने मुलायम स्वरसे कहा—रोती क्यों है ? ऐसा करेगी तो मैं कमरेसे चला जाऊँगा ।

ऊषाने बड़बड़ करके फिर कुछ कहा—कहना रोनेमें मिल जानेके कारणसे समझमें नहीं आया । इसके बाद मैंने फिर 'पूछा' तो वह बोली—मैंने तो कोई दोष किया नहीं है । आप न जाने क्यों मेरा तिर-

स्कार करते हैं। मैं तो आपकी आज्ञा पालन करनेके लिए उसी भाँतिसे वस्त्र पहिनती हूं जैसे कि आप बता आये थे।

मैंने अप्रसन्न होकर पूछा—मैंने भला कब तुझको कपड़े पहिनना सिखाया ?

उसने कहा—जिस दिन फोटो खींचा था।

मैंने पूछा—उस प्रकारसे वस्त्र क्यों पहिनती है ?

लज्जासे मुख नीचेको करके ऊषाने कहा—मांने कहदिया था कि हमेशा आपहीकी बात सुननी पड़ेगी, और जो आप कहेंगे वही करना होगा।

कैसी मधुर भाषा थी! कैसी अमृतमयी वाणी थी! इस बातको मैंने धीर भावसे लक्ष्य किया। देखा तो उस मूर्त्तिमें गर्वका लक्षण कहीं दृष्टि न आया। मेरा चार मासका दुःख और इतने दिनोंका कुसंस्कार पलभरमें जाता रहा। पुष्पोंकी सुगंध सिरमें प्रवेश करके मेरे आनन्दको बढ़ाने लगी। मेरे दोनों ओंठोंने मेरे अनजानमें ही ललनाके ओंठोंसे मधु हरण कर लिया। मैंने फूलवासरके उजालेमें देखा कि ऊषा असामान्य रूपवती है।

क्षमा।

(१)

कलकत्ता—५ मई १८९१

सुषमा,

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र पढ़कर सुखी ही हुआ हूँ। यद्यपि चिट्ठीका सुर करुणा और वेदना व्यञ्जक है तथापि यह कहनेमें सत्यके विरुद्ध

कहना होगा कि मैं उससे विशेष दुःखित या व्यथित हुआ। तुम्हारे पाससे जो आता है वही सुख देता है। यदि विष भी हो तो वह भी तुम्हारा भेजा हुआ होनेसे अमृतसा जान पड़ता है, इसीसे तुम्हारी भर्त्सनायें बहुत मीठी लगीं।

तुम मेरी चिट्ठी न मिलनेसे दुःखित हुईं, किन्तु दुःखी होनेका तो कोई भी कारण नहीं है। यह कहना केवल प्रलापमात्र है कि मैं तुमको 'भूलगया' और चिट्ठी नहीं लिखी। वास्तवमें कोई क्षण भी ऐसा नहीं होता जब कि तुम मेरे जीमें उपस्थित न रहती होओ। तचती हुई गर्मीके दोपहरके घामकी तपनमें मुझको वह चाँदनी रात याद हो आती है— जिस रातको कि मैंने तुम्हारी छतपर तुम्हारे कोमल मुखको उठाकर देखा था। सचमुच तुम्हारी बहिनकी बात सही है—सुषमा तुम्हारी सुन्दरता इस जगतकी नहीं है! और तिसपर भी तुम्हारी सरलता–वह तो स्वाभाविक, पवित्र, निर्मल और हृदयको पागल कर देनेवाली है!

तुम्हारे लिए चिट्ठी लिखनेसे भुजेन भाई तो कुछ बुरा नहीं मानेंगे? बुरा माननेकी इसमें बात ही क्या है? हिन्दू समाजमें सालीको पत्र लिखना बुरा है भी नहीं। वे भी तो मेरी स्त्रीको चिट्ठी लिखा करते हैं। क्या तुमको विदित है कि तुम्हारी चिट्ठीके संगमें उन्होंने किरणको क्या लिखा था? "मेरे प्राणकी किरण"। किरण कह रही थी कि सुषमाके स्वामी रसके सागर हैं। इतने तापमें भी सूखते नहीं है।

सुषमा अब तुम कब मुझको पत्र लिखोगी? तुम्हारा हँसना तो मुझको बहुत ही अच्छा लगता है। क्या थोड़ासा चिट्ठीमें भी भेज दे सकती हो?

तुमको मेरा आशीर्वाद और स्नेह पहुँचे। इति।

शुभाकांक्षी—**अमरनाथ।**

(२)

उत्तरपाड़ा—१३ मई १८९१

बहिन किरणदीदी,

तुमने मेरे स्वामीकी प्रशंसा करते हुए चिट्ठी लिखी, किन्तु मैं उसको ठट्ठा समझती हूँ। बहिन उन्होंने असलमें मुझे चिन्तामें जला डाला है। तुम्हारी चिट्ठी पढ़के वे बड़े प्रसन्न हुए और जानती हो कि उन्होंने क्या कहा—कहा "सुषमा ! तुम्हारी बहिन मुझको, मुसल्मानी पोशाकमें फोटो उतरवाते देखकर ही, यह जान गई कि मैं रसिक लड़का हूँ। मैं क्या सामान्य लड़का हूँ !"

मेरी हँसी रोके भी नहीं रुकी। फूटा भाग्य भला और किसको कहते हैं ?

उस फोटोको देखकर तो तुमने कहा था—बन्दरसे जान पड़ते हो !

अमर बाबू कैसे हैं ? अहा ! कैसी मीठी बोलचाल है ! बहिन तुमपर तो डाह होती है। जैसा सुन्दर चेहरा है वैसा ही स्वभाव भी है, शिवजीका जैसा है—भला यह सब क्यों न हो वे एम. ए. पास भी तो हैं !

तुमने दो ही बातोंमें चिट्ठी चलती कैसे कर दी ? मुझे अपने घर कब बुलवाओगी ? अपनी ननदके विवाहमें बुलाना कहीं भूल न जाना ? यहाँ पड़े पड़े तो मेरे प्राण निकले जाते हैं। तुम्हारे बहिनोई बड़े ही रसिक हैं। 'भों भों' 'गुन गुन' करके ही मारे डालते हैं।

दूसरी चिट्ठीको बाबूको देना न भूल जाना। अधिक इस लिए नहीं लिखा कि कहीं तुम्हारे काममें हर्ज न हो।

अमर बाबूको मेरा स्नेह और प्रणाम कहना और तुम भी स्वीकार करना। वे कैसे हैं ? अपना कुशलपत्र भेजके सुखी करना। इति।

तुम्हारी बहिन,—**श्रीमती सुषमा बालादेवी।**

(३)

साहबगंज ३ जून १८९१

श्रीमती किरण बालादेवी—सावित्री समतुल्यासु ।

मझली बहिन !

मुझे बड़ा ही दुःख हुआ । सुषमा यदि उन पर मर गई तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । चाचीकी तो बुद्धि ही ऐसी थी कि उन्होंने मेमको नौकर रखकर उसे पढ़वाया था । वह मरी सो तो ठीक है, किन्तु अमर बाबू पर क्यों मरी ? जमाई बाबू बुद्धिमान् आदमी हैं, उनका उस राक्षसीको पहिचान लेनेमें देर नहीं लगेगी । जितनी भी हमारे दिनोंकी हैं, उन सबमें अधिक रूपवती सुषमा है । तभी तो यह आफत आई ! हमारी ग्रहदशा ही ऐसी थी तभी तो हमने अमर बाबूसे उसका ऐसा भाव करादिया था ! भला तब कौन जानता था कि पीछेसे ऐसा होगा ?

तुमको रोग लग जानेका तो कोई कारण जान नहीं पड़ता । जान पड़ता है कि तुम दिनभर चिंता ही करती रहती हो । छिः तुम्हारा पति पर अविश्वास है !

सुषमाकी चिट्ठियाँ इकट्ठी कर सकोगी ? यदि ऐसा कर सको तो पूजाके समय घर जाकर उसको नीचा दिखाऊँगी ।

यहाँ सर्दी लगजानेसे मेरे छोटे देवर कुछ बीमार हो गये हैं ! आशा है कि शीघ्र ही अच्छे हो जायँगे !

मायकेके समाचार माल्रूम हों तो लिखना । माँके सिरकी बीमारी कैसी है ? न हो तो तुम थोड़े दिनके लिए हाटखोलामें जाकर रह आओ । बड़ी बहिन क्या शीघ्र ही घर आनेवाली हैं ?

जमाई बाबू क्या हम लोगोंको भूलगये ? उनको मुझे चिट्ठी लिखनेको कह देना।

मैं एक हिसाबसे भली चंगी हूँ ! अब तुम अधिक चिंता न करना। अधिक क्या लिखूँ ? इति।

तुम्हारी प्यारी,—**मृणालिनी**।

(४)

कलकत्ता—८ जुलाई १८९१।

बहिन सुषमा,

वे परसों दिनको तुम्हारे यहाँ निमंत्रणमें गये हैं, किन्तु आज तक नहीं लौटे। कई दिनों तक बराबर मेह बरसते रहनेसे डर लगता है कि कहीं कोई आपत्ति विपत्ति तो नहीं आ गई। नावकी राह ठहरी।

इधर सासजी नाराज होती हैं। उनको भेज देना। यह न सोचना कि इसमें मेरा कुछ स्वार्थ है। जिस बातसे उनको सुख है उससे मुझको दुःख नहीं हो सकता। वे वहाँ तुम्हारे साथ आनन्द कर रहे हैं और तुम्हारे पति भुजेनके साथमें हँसी दिल्लगी कर रहे हैं—यह अच्छा ही है। किंतु यह तुम भी जानती हो कि सुसरालवालोंमेंसे किसीके घर रहनेसे हमारे यहाँके पुराने लोग कितना नाराज होते हैं।

तुम कैसी हो ? यहाँ सब अच्छे हैं। मेरा स्नेह पहुँचे। इति।

तुम्हारी किरणदीदी।

(५)

कलकत्ता—अक्तूबर १८९१।

प्रियतम सुषमा,

तुम्हारी चिट्ठी पढ़कर हृदयमें भालासा लगा। पूजाके दिनोंमें तुम्हारी बहिन मृणालिनीने क्या तुम्हारे साथ कुछ झगड़ा किया था ? भला

उसका क्या अधिकार है, जो तुमको कुछ कह सके। मेरा जी है मैं तुमको प्यार करता हूँ। तुम्हारी चिट्ठी पाकर कल उससे खूब झगड़ा किया। तुम्हारे प्रेमकी सब बातें उसको आदिसे अंत तक सुनादीं। उसको भली भाँति समझा दिया कि मैं तुम्हारे गुणों और शिक्षापर मोहित हूँ, तुम्हीं मेरी एक मात्र अधीश्वरी हो, तुम्हारे रूपकी ज्योति संसारको जीत लेनेवाली है, तुम्हारा प्रेम बड़ा गहरा है, हमारे तुम्हारे प्रेमकी धार उसकी जैसी छोटी बेलसे रुकनेवाली नहीं है और मेरे चित्तकी गतिको रोकनेकी चेष्टा करना उसका पागलपन है। वह ये बातें सुन कर चुप हो रही। शायद रोती रही होगी। उसको कोई बड़ा रोग होगया है। दिन दिन दुबली होती जाती है; अच्छा इन सब बातोंको अब इस समय छोड़ो।

सुषमा! अब फिर तुम कब देखनेको मिलोगी? ना समझ भुजेनको एक वार फिर न भेज दो कि वह आमंत्रित करके मुझे बुला लेजाय। देखा, आदमी विना लिखेपढ़े कैसा होता है? क्या तुमको उसपर दया नहीं आती?

अब अधिक लिखना व्यर्थ है। मिलने पर सब हाल कहूँगा। सुषमा अब विदा लेता हूँ। इति।

अभिन्नहृदय, अमर।

(६)

उत्तरपाड़ा—१२ अक्तूबर १८९१।

प्राणाधिक अमर,

देखा कैसा साहस किया! उसीके हाथों तुम्हारे पास चिट्ठी भेज दी थी! प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्रीके यदि ऐसा ही बुद्धिमान् स्वामी हो, तो आत्महत्या करनेवालोंकी गिनती बहुत बढ़ जाय। लाख (मोहर)

तो खूब अच्छी तरह देख ली थी? कहीं वह रास्तेमें खोल कर पढ़ लेता? डर भी क्या था? वह तो मुझसे यमकी तरह डरता है। उड़ा देती, कह देती कि वे बड़े ठठोलिये हैं, इसी लिए मैंने भी हँसी की थी।

आज रातको आना मत भूल जाना। निमंत्रणकी याद दिलानेहीके लिए यह चिट्ठी लिखी है। चातकीकी भाँति आशासे सड़कहीको देख रही हूँ। न आओ तो मेरा ही सिर खाओ—आना जरूर!

सेविका, सुषमा।

(७)

कलकत्ता—२ जनवरी १८९२

प्यारी मृणालिनी,

बड़ी सर्दी होगई है। वैद्यराज बहुत सोचमें पड़े हैं। कहते हैं कि यक्ष्माका क्या कारण है? बूढ़ेने सैकड़ों श्लोक सुना डाले। हाय भाग्य! क्या शास्त्रमें सभी बातें लिखी पड़ी हैं? मैंने मन ही मन सोचा कि ओझाको बिना बुलाये यह बीमारी नहीं जा सकती। बिना बैगीके भला कहीं वैद्यके घरका सांपकाटा अच्छा होता है?

मैं तेरी बड़ी बहिन हूँ। तेरे पैरों पड़ती हूँ कि इस मामलेमें अब अधिक झगड़ा मत उठा। तेरी चिट्ठी पाकर ही तो श्वसुरजीको रोगकी पहिचान हुई है। पहले कोई भी नहीं समझा था। सास जो सेवा शुश्रूषा करती हैं, उससे मुझे कष्ट होता है। तुम्हारे पीड़ाके संवाद देनेहीसे ब्राह्मणकी लड़कीको इतना कष्ट हुआ। अब सबको देखकर उनके पैरोंकी धूल शिर चढ़ाती हूँ। तीन दिनसे रोग बहुत बढ़गया है। उठा नहीं जाता है। जान पड़ता है कि शांति पास ही है। मेरा अपने लिए हार्दिक आशीर्वाद जानना। इति।

तुम्हारी अभागिनी बहिन, किरणबाला।

(८)

उत्तरपाड़ा २ अप्रैल १८९२ ।

भली भाँति समझ लिया कि किरण दीदीकी मृत्युका कारण मैं ही हूँ । साल भर पहिले जान पाती तो अच्छा होता । क्या करूँ ? बहुत ही सबल वासनाकी आँधीके झोंकेमें पड़कर मैं तिनकेकी भाँतिसे उड़ गई । जिस समय पतंग दीपककी उज्ज्वल चमक देखकर मोहित होता है उस समय उसको यह नहीं सूझता है कि दीपक केवल जलानेहीवाला है, वह फल नहीं है और न उसमें प्राण और मन हरनेवाली सुगंध है । नरककी बाहरी चमक दमक देखकर ही मैं पागल हो गई थी—कूद कर जाने पर दीख पड़ा कि वहाँ निरी आग ही है—जिस शांति-जलको पीनेके लोभसे मैंने इहकाल और परकाल दोनोंको जलाञ्जलि दी थी, अब वहीं हलाहल दिखलाई पड़ रहा है ! कौन जाने कि असली शांति मिलनेमें अभी कितनी कसर और है । क्यों बहिन, क्या तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी ? किरण दीदीका नाम आते ही मेरा सब शरीर काँप उठता है । न जाने इस पश्चात्तापसे कैसे छुटकारा होगा ? लोक लाजसे आत्महत्या करनेको सोचती हूँ किन्तु पापीको मृत्युका बड़ा डर होता है ! बड़े भारी जीवनके शेष दिन भस्म हो जायँ, नरकके धुयेंसे साँस रुक जाय, हाँफ हाँफ और रो रो कर मैं जवानीके पागलपनके पापके प्रायश्चित्तको करूँ । बहिन, दया करके एकाध चिट्ठी तो भेजती रहना । कहीं तुम भी इस अभागिनी और पतित बहिनसे घृणा न करने लगना ?

हतभागिनी सुषमा ।

(९)

कलकत्ता ७—अप्रैल १८९२ ।

सुषमा !

अब जाना कि मैं क्या खो बैठा ! प्रेमकी भागीरथीको छोड़कर सूखी बावड़ीमें जल पीनेको गया था, यौवनके घमंडसे पशुबुद्धिवश

बहुमूल्य रत्नको फेंक कर काचके संसर्गसे अपने शरीरको क्षतविक्षत कर बैठा, देवीके बदले राक्षसीकी आराधना करके उपहारमें अशांति पाई। नहीं, तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। इस पापका करनेवाला तो मैं ही हूँ। कौन कहता है कि किरण मरगई। वह तो हर घड़ी अपने स्वर्गीय प्रीतिपूर्ण मुखसे मेरे साथ रहती है। अभागिनी किरण मेरी थी! वह अब भी मुझे नहीं छोड़ पाती है! जीमें होता है कि देखे कि अभी और कितने पाप कर सकता हूँ! नहीं किरण अब तुम्हारे हृदयमें मैं क्षयरोग पैदा नहीं कर सकता। अब लाख चेष्टा करने पर भी तुम बिना बोले हुए चुपचाप मेरे पाशविक अत्याचारोंको नहीं देख पाओगी। हाय, अब तो नृशंस, निठुर और पापी स्वामीको आप मरते मरते ताड़के पंखेसे हवा करके शांति नहीं दे पाओगी! अब जब तुमको जलाने और दुःख पहुँचानेमें समर्थ ही नहीं हूँ तब फिर पाप करूँगा ही क्यों?

किरणका मरना भी अच्छा ही हुआ—उसके गम्भीर प्रेमका पता चलगया। और यह भी समझमें आगया कि विद्याका घमंड एक जघन्य और गर्हित कर्म है। इसी लिए कहता हूँ कि 'आओ! सुषमा हम तुम दोनों पिशाच और पिशाची एक साथ बैठकर चिरकाल तक पश्चात्ताप करें और रो रो कर कहें—"किरण! किरण! हमको क्षमा करो!"

हतभाग्य अमर।

ईरानी रमणी।

(१)

पूजाकी छुट्टीके दिनोंमें उसबार पश्चिमकी यात्रा करनेमें सबसे बड़ी बाधिका हुई थी हिन्दुस्थानी भाषाकी अनभिज्ञता। घरपर मैं जिस

बोलीमें नौकरोंसे बोला करता था—पश्चिममें जाने पर जाना गया कि हिन्दी भाषा उससे बहुत कुछ भिन्न है। इसी कारण मुझको अपनी पश्चिमयात्राका पूरा सुख नहीं मिला। और जान पड़ता है कि बड़ोंकी बात न माननेका पाप भी मेरे पीछे पीछे गया था। माँने कहा था कि 'छठको यात्रा नहीं करते हैं किसी और दिन जाना।' इस बात पर हाजिर जवाब मणीन्द्र बोला था—"यदि इस दिन यात्रा नहीं की जाती है तो भीड़ ट्रेनमें कम होगी। छठहीको चलो।" किन्तु स्टेशन पर जाकर देखा तो आशंकासे भी अधिक भीड़ निकली! इसके अतिरिक्त गयाजीमें स्थानका अभाव, और काशीजीके बन्दरोंका उपद्रव आदि कितनी ही छोटी मोटी दिक्कतोंने हमारे भ्रमणमें बराबर साथ दिया। प्रयागके पवित्र संगम पर स्नान करके हमने अक्षयवट देखनेके लिए दुर्गमें प्रवेश किया। न जाने एक सिपाहीने हिन्दुस्थानी बोलीमें क्या कहा। अंतमें जब उसने समझमें आनेवाली भाषामें गाली दी तब जाना कि किसी निषिद्ध स्थानमें आना हो गया। पैसेकी हानि तो बराबर पग पग पर होती थी। गाड़ीवाले, इक्केवाले, और कुली आदि सभी हमको ठग लेते थे। जब प्रयागमें दही मोल लेकर एक स्त्रीसे दाम पूछे, तब वह बोली—"दो डब्बल"। मैंने मुखसे कुछ भी लौट फेर किये बिना उसको चार पैसे दे दिये। किन्तु फिर सुननेमें आया कि डब्बलका अर्थ है एक पैसा।

दिल्ली पहुँचने पर हमारे भाग्य खुलनेका प्रधान कारण हुआ रास्तेमें एक अँगरेजी और हिन्दुस्थानी भाषा जाननेवाले साथीका मिलना। अब्दुल मजीदसे गाड़ीहीमें परिचय हो गया था। वह भी हम ही जैसा ऐनक लगानेवाला, कालिजसे नया निकला हुआ, भ्रमणप्रिय युवक था। इस लिए हम लोग बहुत ही थोड़ी देरमें परस्पर घुलमिल गये।

हम लोगोंने उसको प्रेसिडेंसी कालेजके हालचाल सुनाये और उसने हमको अलीगढ़ कालेजकी बहुत सी बातें बतलाई। अन्तमें यह ठहरा कि दिल्लीमें जाकर हम सब लोग एक ही स्थान पर ठहरेंगे। मजीदके परामर्शसे हम लोग जाकर चाँदनी चौकमें तोतारामके होटलमें ठहरे।

दिल्ली शहर अब्दुल मजीदका भली भाँति देखा हुआ था। इस लिए वह हमको लेकर दिनभर घुमाता फिरता था। जुम्मा मसजिद मोती, मसजिद, दीवान खास और दीवान आम इत्यादि अनेक ऐतिहासिक स्थानोंकी सैर करके हम लोग लुप्त मुगल गौरवको स्मरण किया करते थे। पुराने दिल्ली दुर्गपर स्थान स्थान पर अरबी और फारसीमें जहाँ जहाँ जो कुछ भी लिखा था वह सब मजीद हमको समझाता था। इससे हमको पता चलगया कि बी. ए. को पास न कर सकने पर भी मजीदने अलीगढ़ कालेजमें केवल क्रीकेट खेलनेहीमें समय नहीं बिताया।

(२)

दिल्लीकी 'क्वीन्सपार्क' में बैठकर हम लोग मणीन्द्रके साथ घरको लौटनेकी सलाह कर रहे थे। इन छः सात दिनोंमें दिल्लीके दृश्योंको भली भाँति देख डाला था, इस लिए अब अधिक दिनों वहाँ पड़े रह कर व्यर्थ समय नष्ट करनेको भी जी नहीं चाह रहा था। जान पड़ रहा था कि अब्दुल मजीद भी लखनऊ चल देनेको व्यग्र है। इस लिए दो एक दिन लखनऊ ठहरनेके पीछे घरको लौट जाना स्थिर हुआ। हम लोगोंको बागहीमें बैठा छोड़कर अब्दुल मजीद अपने किसी मित्रसे बातचीत करनेको चला गया था। कोई आध घंटा पीछे वह हँसता हुआ लौट आया।

हमने देखा कि उसके पीछे ही एक जिप्सी (Jipsy) स्त्री थी। उसका चेहरा बहुत ही हृष्ट पुष्ट और सुन्दर था और बिना सफाई

किया हुआ धूल धूसरित खूब चमकता हुआ मुख था । युवतीके वस्त्र बहुत ही मैले थे और जगह जगह पर फट भी गये थे । हाथमें एक छोटीसी पोटली लिए हुए वह टूटे हुए चपोले जूते पहने मजीदके साथ हमारी ही ओरको चली आ रही थी ।

मैंने कहा—" हाँ, ठीक! यह तो भुक्खड़बद्दुओंके दलकी स्त्री माळूम होती है । जान पड़ता है कि मजीद इससे साँपकी औषध मोल लेगा ।

पास आते ही मजीद बोला—" व्रजेन बाबू, आज मैं एक नया जीव लाया हूँ । यह ईरानी जिप्सी है । पर्शियासे भारत घूमनेको आई है ।"

मैंने कहा—" हाँ ! मैं भी जानता हूँ । ये औरतें दल बाँध कर बंगाल भी जाती हैं । लोगोंसे झगड़ा करती हैं । छोटी छोटी चीजें   ती हैं और जहाँ तहाँ मैदानमें डेरे डाल लिया करती हैं । जब कोई मना करता है तब उससे लड़ पड़ती हैं ।

ईरानी स्त्री आगे बढ़कर घास पर बैठ गई । मजीदने उससे कुछ कहा जिसपर युवतीने अपने हाथकी पोटली खोलकर उसमेंसे बहुतसे छोटे पत्थर निकाले ।

मणीन्द्र बोला, "यह तो जौहरी माळूम होती है ! बहुतसी जवाहरात निकाले डालती है ।"

मजीद बोला—" इनके पास बहुतसे कीमती पत्थर भी पाये जाते हैं । पोंछ कर साफ कर देनेसे येहीं अधिक सुन्दर दिखाई पड़ने लगेंगे । "

युवती घास पर बैठी हुई एक एक करके बहुतसी वस्तुयें दिखाती रही । मजीद उसके साथमें खूब बातचीत करता जा रहा था । हम

लोग उनकी बातोंको बिलकुल ही नहीं समझ रहे थे। क्योंकि उनकी बातचीत फारसीमें हो रही थी। हम उनकी अंगभंगीको देख रहे थे। मजीद और ईरानी स्त्री दोनों पुराने परिचित जान पड़ते थे। वे परस्पर एक दूसरेकी बात पर हँसते थे बातें करते ही करते दोनोंके नेत्र ज्योतिर्मय हो पड़ते थे और बीचबीचमें ईरानी रमणीका मुख सिन्दूरी रँगका हो जाता था।

बीचमें मजीदने कुछ कहा कि जिसमें 'शादी' शब्द समझमें आया। उनके भावोंको देखकर जीमें जो सन्देह हुआ था अब 'शादी' शब्द कानमें पड़ते ही उसने जड़ पकड़ ली। अब निश्चयसे समझमें आगया कि ये दोनों रसकी बातें कर रहे हैं। क्योंकि 'शादी' का जिकर आते ही लड़कीके मुखपर लाली आगई थी।

मैंने कहा—"मजीद साहब! क्या ऐसी बातोंके सुखसे हम लोगोंको वंचित रखना ठीक है? ब्याहकी क्या बातें हो रही हैं?"

मजीदने हँसकर कहा—"यह बड़े ही अफ़सोसकी बात है कि यह अँगरेजी नहीं जानती। मैं इससे कह रहा था कि मेरे साथ शादी करोगी? इससे बेचारी शरमा रही है।"

हम लोग खूब हँसे जिससे कि रमणी और भी लज्जित हुई। मजीदने कहा—"आप कुछ दूरको चले जायँ। फिर बादमें बतलाऊँगा कि कैसा मजा हुआ।"

मजीदके अनुरोधसे मणीन्द्र और मैं दूरको चले गये। वहाँसे देखा तो फिर दोनोंको पहले ही की भाँति रसकी बातोंमें डूबे हुए पाया। बीचबीचमें दोनों आकाशकी ओरको हाथ उठाते जाते थे और कभी कभी अपने वक्षस्थलों पर हाथ रख कर वादानुवाद करते थे। मणीन्द्र

बोला—" भाई ये ढंग तो कुछ बहुत अच्छे नहीं हैं! कहीं यह जादूगरिनी हमारे मर्जीद मियांको कामरूप कामिक्षाको न ले उड़े!"

मैंने कहा " नहीं, यह डर तो नहीं है! कहीं अन्तमें यह ईरानी ही बुरका आदि पहिन कर पर्दानशीन न हो जाय!"

इसके थोड़ी ही देर पीछे मर्जीद हँसता हुआ हम लोगोंमें आ मिला। मुसकुराता हुआ मुख होनेपर भी उसमें उत्तेजनाका भाव दिखाई दे रहा था और उसके भीतर चिन्ता भरी हुई जान पड़ती थी।

(३)

मजीदके अनुरोधसे हम लोग और भी दो दिन तक दिल्लीमें ही रहे। किन्तु इन दोनों दिन फिर मजीद हमारे साथमें सैरको नहीं निकला। वह सबेरे उठते ही कहींको चला जाता था और फिर दिन-भर कहीं और बिता चुकने पीछे संध्याको लौट आता था। पहले दिन हमने उससे इसका कारण पूछा। वह बोला कि मेरा एक मित्र बड़ा बीमार है। इससे दिनभर उसकी शुश्रूषा ही में व्यस्त रहता हूँ। उसकी आँखोंमें भी बड़ी गहरी चिन्ताकी छाया पड़ रही थी। उसकी हास्यमय प्रकृति और सदा हँसी दिल्लगीसे भरा रहनेवाला स्वभाव विशेष रूपसे बदल गया था। हमने निश्चय कर लिया कि उसके जिस मित्रको पीड़ा हो गई है, वह और कोई नहीं, उसका अन्तरंग ही है। वास्तवमें उसका अन्तरंग ही पीड़ित था। यदि ऐसा न होता तो भला ऐसा प्रफुल्लित युवक इस बातहीसे ऐसा अधीर क्यों हो जाता और ऐसी उत्तेजना और चंचलता क्यों दिखाता!

दूसरे दिन संध्याके पीछे मर्जीद बोला—" आज आप लोगोंसे इजाज़त चाहता हूँ। आप कलही दिल्लीसे चले जावें। यहाँ बड़ी गड़बड़ हो रही है। अगर ज्यादह रहियेगा तो शायद मुसीबतमें पड़ जाइएगा।"

असल बात यह है कि ऐसा साथी छोड़ते हुए हमको बड़ा कष्ट हो रहा था। किन्तु उसका चिन्तासे क्लेशित मुख और उसका आग्रह और संकल्पकी दृढ़ता देखकर उसके साथ तर्क करनेको जी नहीं हुआ। यह समझनेमें देर नहीं लगी कि वह किसी बड़े व्रतका व्रती हो गया है। लड़ाईमें जानेसे पूर्व जैसे कि सेनापति चिन्तामें व्याकुल होता है वैसे ही इस विषयमें मजीद भी जान पड़ रहा था। यह बात स्वप्नमें भी नहीं विचारी थी कि हास्यरसका प्रेमी सदा आनन्दमें रहनेवाला युवक इतना दृढ़ प्रतिज्ञ निकलेगा। उसके भावोंकी गति देखकर ऐसा जान पड़ रहा था कि यदि वह हम लोगोंको आज ही दिल्लीसे चलागया हुआ नहीं देखलेगा तो दिल्लीका सिंहासन ही उसके हाथसे निकल जायगा!

मैंने कहा—"क्यों? कालराके लक्षण तो इस प्रान्तमें दीख नहीं पड़ रहे हैं। तब फिर इतनी भागाभागका क्या कारण है?"

वही पहिलेकासा बिना जँचा हुआ उत्तर देकर ही मजीद साहब हम लोगोंसे अनुरोध करने लगे कि आप लोग आज ही रातको दिल्लीसे चले जायँ।"

मणीन्द्रने कहा—"भाई पहले भी तो आज ही दिल्लीसे चल देनेका विचार था, तब फिर चलो आज चल ही दें।"

मैंने कहा—"चलदेनेमें मुझको कोई भी आपत्ति नहीं है, किन्तु यदि मजीदको साथ लेलिया जाता तो लखनऊमें सुविधा रहती।"

यह बात मैंने मजीदको भी बतलाई। वह बोला, "आपलोग तो कुछ दिन लखनऊमें ठहरेंहीगे। वहाँ फिर मिलना हो जायगा। मेरा पता लिख लेजाइए और दो तीन दिन पीछे वहीं खोज लीजिए।"

हमने मजीदका ठिकाना लिख लिया और फिर उसको यथेष्ट धन्यवाद दिया। यह बात भी ठहर गई कि लखनऊमें हमारा और उसका मिलना होगा। इसके अनन्तर मणीन्द्रने उसके दिल्लीके ठिकानेके संबंधमें बहुत कुछ पूछा, किन्तु चाहे किसी कारणसे भी क्यों न हो, वह हम लोगोंसे अपना दिल्लीका ठिकाना छिपाना चाहता था। इस लिए शिष्टताके विचारसे हमने भी उसको अधिक तंग करना उचित नहीं समझा।

[४]

सर्व चीज वस्तु सँभाल कर हम दोनों दिल्लीसे चलदेनेको तैयार हो गये। गाड़ी खड़ी हुई इन्तजार कर रही थी। होटलका मनेजर तोताराम अपना हिसाब किताब साफ करानेके लिए पंजाबी भाषामें कुछ गिड़विड़ गिड़विड़ कर रहा था और मणीन्द्र सजधज कर एक चारपाई पर लेटा हुआ उस वक्तृताका सारसंग्रह करनेकी चेष्टामें लगा हुआ था।

वह मुझसे कहने लगा—"सुना? तोताराम इस पुस्तकमें एक सार्टिफिकट लिखालेजाना चाहता है।"

मैंने कहा—"इसमें क्या लगता है? लिख दो कि होटलका रसोइया तरकारीमें नमक नहीं डालता है, बिछौनोंमें खटमल भरे हैं और यहाँके नौकर कालीघाटके भिखारियोंकी भाँति पग पग पर पैसा माँगते हैं।

मणीन्द्र थोड़ासा हँसकर उसकी पुस्तकमें आडंबरके साथ लिखने लगा। इतनेहीमें नीचे बड़ा कोलाहल हुआ जिसकी भाषा कि समझमें नहीं आती थी। चीखें आरही थीं। हम सब यह देखनेको उठ बैठे कि क्या बात है! इतने ही में वह भीड़ हमारे ही यहां चली आई!

उस दलको देखते ही मेरा दम सूख गया। उनके कपड़े देखनेसे जान पड़ा कि एक तो कोई ऊँचा पुलीसका कर्मचारी हैं, दो तीन पहरेवाले हैं और उनके साथमें दो तीन जंगली पुरुष और दो ईरानी स्त्रियाँ हैं। इन जिप्सियोंके मुखसे फुहारेकी भाँति अनर्गल बातोंकी धाराएँ छूट रही थीं। दोनों स्त्रियाँ पागलोंकी भाँति फिर रही थीं और मेरी ओरको उँगली उठाकर शायद फारसी भाषामें कुछ कहती जाती थीं।

दारोगा साहबने उनको रोकनेकी चेष्टाकी और बड़ी ही मीठी उर्दूमें हमसे कुछ पूछा। मणीन्द्र उनके कहनेको कुछ समझ गया, किन्तु मैं 'लड़की' और जवाहरात इन दो शब्दोंके अतिरिक्त कुछ भी नहीं समझ सका।

मणीन्द्र बोला—"जिप्सी ईराणी लेड़कीका खोज करता हाय हियां। हामरा कि जानता?"

दारोगा साहबने हँस कर टूटी फूटी अँगरेजीमें कहा—"आपके जो साथी थे, वे कहाँ गये!"

अँगरेजी सुनते ही मैंने एक लंबी चौड़ी वक्तृता दी और फिर उनलोगोंसे कहा—"इतने लोगोंके साथ बलपूर्वक हमारे यहाँ चले आना बहुत ही अनुचित है। और फिर हमारी ट्रेनका समय आचुका है। ट्रेन फेल होने पर हमारी हानिको कौन भर देगा! कलकत्तेमें ऐसी अराजकता कभी नहीं हो पाती।"

मेरी लम्बी चौड़ी वक्तृताका मर्म न समझ सकनेपर दारोगा साहबने फिर उर्दूही छेड़ी। ईरानियोंका शरीर छूछूकर और कई वार जवाहरात दिखलाकर हमको समझा दिया कि ईरानी लोग कह रहे हैं कि आप लोगोंने लड़की और जवाहरात चुराये हैं।

इस बातको सुनते ही मैं तो अग्निशर्मा होगया और बोला—'Absurd! हम लोग क्या इन नंगोंकी लड़की और जवाहरात लेकर कलकत्तेको भागेंगे। ऐसी झूठी नालिस करेगा तो अच्छा नहीं होगा। जानता है कि हम कौन है? ग्रेज्युएट है।" मणीन्द्रने धीर भावसे कहा—"नहीं क्रुद्ध होनेकी बात नहीं है। इसमें मजीद मियांकी कुछ कारसाजी है।" इस लिए दारोगा साहबसे कहा—"लड़की क्या चौदह पंद्रह वरसकी है?"

दारोगा साहब बोले—"हाँ! ये लोग कहते हैं कि इन दोनें स्त्रियोंने आपको लड़कीके साथमें क्वीन्सपार्कमें देखा था।"

मैं कुछ नरम होकर बोला—"हम लोगके साथमें देखा था। नहीं मजीदके साथमें देखा होगा। मजीद नाम जिसका है वह एक घूमने फिरनेवालेकी लड़की ले आया था। किन्तु यह हम कैसे जान सकता है कि बादमें क्या हुआ?"

दारोगा साहबने उन लोगोंसे फार्सीमें बातचीत करके कहा कि ये लोग भी कहते हैं कि आप लोगोंके साथमें कोई मुसलमान था, किन्तु फिर भी यह आपको निर्दोष (Innocent) नहीं समझते हैं।

दारोगा साहबकी बातोंसे क्षणभरमें पता लग गया कि मजीद मियांकी शादीका रहस्य कदाचित् धीरे धीरे कार्यरूपमें परिणत हो गया और मित्रके कालरेकी बात बनावटी थी। वह हम लोगोंसे आज ही रातको दिल्ली छोड़ जानेके लिए भी इसीसे कह रहा था कि पीछेसे कभी हम पर कोई विपत्ति न पड़े। यदि कुछ देर पले ही हम लोग चल पड़े होते तो इस झगड़ेसे बच गये होते।

अस्तु, पल भरमें मणीन्द्रके साथमें मैंने परामर्श किया। कुछ अँगरेजी और कुछ हिन्दीमें मैंने दारोगा साहबको मजीदका सब वृत्तान्त

क्रमसे सुना दिया। जिस युवतीको मैंने मजीदके साथमें देखा था वह इन्हीं जिप्सियोंकी लड़की है या नहीं, यह स्थिर करनेके लिए उनसे उसका नाम पूछा। क्वीनपार्कमें मैं उस लड़कीका नाम 'सलीना' सुन चुका था।

ईरानियोंसे पूँछ कर दारोगा साहबने बताया कि 'उनकी कन्याका नाम सलीना था।' अब सन्देहका कोई भी कारण नहीं रह गया। दारोगा कहने लगा—"मेरा विश्वास है कि सलीना मजीदके साथ ही भाग गई है। वह आपको तो अपना कोई पता नहीं बतला गया है?"

हमने दारोगासे कह दिया कि लखनऊके गोलागंजके मकानेके अतिरिक्त और कोई पता भी उसने हमको नहीं बतलाया है। हमने पुलीसको यह संवाद नहीं दिया कि वह अलीगढ़ कालिजमें पढ़ता है या वहाँ अनुसंधान करनेसे उसका हाल मिल सकता है। पहले तो हमको इसीमें संदेह था कि यह कार्य मजीदके द्वारा हुआ भी है या नहीं। दूसरे इतने थोड़े ही समयमें मजीदने हमको ऐसी मित्रताक परिचय दिया था कि जिससे उसकी कुछ भी हानि करनेको हमारा जी नहीं चाहता था। यदि वह वास्तवमें अपनी जवानीकी उमंगकी तरंगमें किसी ईरानी ललनाको अपनी धर्मपत्नी बनानेके लिए ले भी गया हो, तो उस बेचारेने क्या बुराईका कार्य किया।

किन्तु यह पाप भुगतना हमको पड़ा। दारोगा साहबने बड़ी नम्रताके साथमें हम लोगोंसे क्षमा प्रार्थना करके बक्सोंको खोलकर खान तलाशी करनेका प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि ये ईरानी कह र " कि कोई दो तीन सहस्र रुपयेके जवाहरात चोरी गये हैं। इस लि कर्त्तव्यके अनुरोधसे आप लोगोंके बक्सोंकी तलाशी मुझको लेन पड़ेगी।

इससे अधिक अपमान सूचक बात या व्यवहार मेरी समझमें और कुछ हो ही नहीं सकता था। केवल थोड़ेसे जंगली भुक्खड़ोंके कहनेसे दो शिक्षित बंगाली ग्रेजुएटोंकी तलाशी ली जायगी, यह सुनकर मैं बहुत ही मर्माहत हुआ। यदि जेलखानेको जाना पड़े तो भी तो ऐसे प्रस्ताव पर मैं राजी होनेवाला नहीं हूँ। किन्तु दारोगा साहब भी छोड़ देनेवाले जीव नहीं थे। उन्होंने पहले तो मीठी मीठी बातें की, पीछे वे बोले कि यदि आप लोग मेरे तदारुकमें बाधा देंगे तो म जबरदस्ती तलाशी लूँगा और फिर ऐसा मनोभाव भी प्रकट किया कि अन्तमें आपको थाने लेजाऊँगा।

मैंने उनके पीछे खड़े हुए दूतों पर दृष्टि डाली, तोतारामके डरे हुए चेहरेको देखा और क्रोधसे भरे हुए ईरानियोंकी ओर भी देखा। अन्तमें मणीन्द्रसे पूछा कि क्या करना चाहिए?

मणीन्द्र बोला—"देखें न, बक्सोंमें क्या खाक धूल रक्खी है। व्यर्थ झगड़ा करनेसे क्या प्रयोजन है?"

अब दारोगा साहबने खाना तलाशी आरंभ की। इस झंझटके मारे उसदिन रातकी गाड़ी नहीं मिल पाई और दूसरे दिन १० बजे तक वहीं पड़े रहना पड़ा।

(५)

उसबार पश्चिम जानेसे उर्दू और फार्सी भाषाकी झंकार सुनकर और उत्तर पश्चिम भारतवर्षमें सर्वत्र ही उर्दूको प्रचलित देखकर जीमें बड़ी ही इच्छा हुई थी कि उर्दू भाषाको अवश्य ही सीखूँगा। इतनी बड़ी और आवश्यकीय भाषाको सीख डालना प्रत्येक शिक्षित बंगालीका कर्त्तव्य है। कलकत्ता लौट कर छः मासके भीतर ही मैंने अपने संकल्पके अनुसार कार्य कर डाला और अपने एक मुसलमान मित्रके

पास 'अलिफ़बे फार्सी' नामक उर्दू पुस्तकका पहिला भाग पढ़ना आरंभ करदिया।

इसके पीछे एक वार बी. एल. परीक्षाकी झंझटमें उर्दू पढ़ना बन्द करदेने पर भी परीक्षाके बाद दूने आग्रहके साथमें मैंने फिर पढ़ाई आरंभ कर दी। मेरे एक रिश्तेदार पटनामें विकालत किया करते थे। मैं जिन दिनों पास होकर अलीपुरके सुशिक्षित मंडलरूपी तरुवरके शांतिप्रद आश्रयको ग्रहण करनेके विचारमें था, उन्हीं दिनोंमें मेरे एक नातेदार गिरीश बाबूने पिताजीको एक पत्र लिखा—" यदि ब्रजेनका जी हो तो वह यहाँ हम लोगोंके पास चला आ सकता है। यहाँ हम लोगोंकी सहायतासे वह आरंभहीसे कुछ न कुछ पाने लगेगा। किन्तु उर्दू जानना बहुत ही आवश्यक है। यदि आनेकी इच्छा हो तो उसको उर्दू सीखनेकी चेष्टा करना चाहिए।"

गिरीश बाबूका पत्र पाते ही मैंने तो स्वर्ग ही हाथमें पा लिया। पश्चिमकी ओरको मेरी रुचि बराबर ही चली जा रही थी और फिर कुछ ही दिनों पूर्व चिट्ठी पत्रीमें स्त्रीसे अनबन हो जानेके कारण कुछ दिनोंतक निर्वासितकी भाँति अपने घरके लोगोंको भुलाये जाकर दूर परदेशमें अकेले रहनेके कल्पित चित्रको मैं अपने हृदय पटल पर अंकित कर रहा था। इस लिए पिताजीको समझाकर मैंने कहा— 'पटना तो कलकत्तेके पास ही है, यहाँ तक कि सनीचरके सनीचर घर आते रहना संभव है।"

किन्तु पिताने शीघ्रही कोई हाँमी या नाहीं नहीं का। अन्तमें जब उन्होंने मेरा बहुत ही आग्रह देखा तो कह दिया—" मैं तीन मासकी छुट्टी लेकर तुम्हारे साथ चलूँगा, आगे जो कुछ होगा देखा जायगा।"

मैंने यह जानकर भी कि अब निर्जन प्रवास नहीं होगा, केवल प्रवास ही होगा अपने जीमें पिताके स्नेहकी खूब प्रशंसा की। सोचा कि तीन मास तो देखते ही देखते कट जायँगे फिर प्रवासमें रहते रहते स्त्रीकी उस निष्ठुर मूर्त्तिको हृदयसे एक बार ही मिटा दूँगा अन्तमें गिरीश बाबूके कहनेसे मैं एक मुंशी रखकर "इन्तखावे हबीब" नामक पुस्तकमें सिंह, गर्दभ और मंडूक इत्यादिकी अपूर्व हिकायतें पढ़ने लगगया, और प्रति दिन मशीनके पहियेकी भाँति अदालतको आने जाने लगा।

(६)

चार बरस गिरीश बाबूके साथ रहनेसे और अपनी मेहनतसे मेरी प्रेक्टिस कुछ कुछ जमगई। कमीशन लेना बन्द कर दिया और थोड़ी मीठी मीठी बातों और थोड़ेसे परिश्रमसे मुख्तारोंके दलमें प्रिय होगया। धीरे धीरे आमदनीकी राह खुलती जा रही थी।

पहले पहल जब विदेशमें आकर अपूर्व विघ्नबाधाओंमें पड़कर competition (संग्राम) कर रहा था, तब सोचा करता था कि आर्थिक दशाकी उन्नति होजाने पर सुखी बन जाऊँगा। किन्तु अब आर्थिक दशाकी उन्नतिके साथ ही जीमें प्रश्न उठता था कि यदि ऐसी आदमनी कलकत्तेमें होती तो कैसा रहता!

आज कोर्टसे लौटकर घरमें बैठा हुआ स्त्रीके साथ हँसी मजाक कर रहा था।

वह कहने लगी—"कुछ दिनकी छुट्टी लेकर घरको क्यों नहीं चलते? कलकत्तेमें बच्चेका अन्न प्रासन संस्कार करके फिर लौट आवेंगे।"

मैंने कहा—"तुम व्यर्थमें हमारा मन मत बिगाड़ो, सरला! तुम्हारी ही बदौलत तो देश छोड़ना पड़ा है। तुम्हारे ही कारण तो

आज मैं अपने कुटुम्बियोंको छोड़े हुए परदेशमें पड़ा हुआ हूँ। यदि उसबार तुमने नाराज न कर दिया होता, तो भला इस देशमें क्यों आता?"

मेरी आवेगभरी हुई भाषा सुनकर सरला खूब हँस पड़ी जिससे कि उसकी स्वाभाविक कांति दूनी उज्ज्वल होगई। मैं उसके हँसनेसे बिगड़कर बोला—"अब यदि उस बातके कहनेसे तुम हँसोगी तो मैं तुमसे बोलना चालना बन्द कर दूँगा।"

सरला बोली—"अब परदेशमें ऐसी चालाकी नहीं चल सकती।"

मैं अपने हृदय पर अपना संयम दिखानेके लिए बरामदेमें चला आया। नीचेको नजर पहुँचते ही कई एक जिप्सी सड़क पर चले जाते हुए दिखाई दिये। उनको देखते ही हृदयमें एक प्रकारकी उत्तेजनासी मालूम हुई। दौड़कर घरमें जाकर सरलासे कहा—"सरला जल्दी बाहर आओ, क्या एक नई चीज देखोगी?"

सरलाने आश्चर्यसे मेरी बाँह पकड़कर कहा—"क्या नई चीजहै!"

मैंने कहा—"तुमको दिल्लीके ईरानी जिप्सियोंका हाल सुनाया था। तुमने ईरानी जिप्सी देखने चाहे थे। आज ये कई जिप्सी घरके सामनेसे होकर जा रहे हैं, आओ–जल्द आओ।"

सरला झपटकर बाहर आई। तब तक ईरानी मेरे सामनेसे आगे बढ़कर कुछ दूर निकल चुके थे। सरला उनको भले प्रकार नहीं देख पाई।

सरला बोली—"तुम तो कहते थे कि सलीना बड़ी सुन्दरी है। इन लोगोंको देखनेसे तो वह बात ठीक नहीं जान पड़ती।"

मैंने कहा—"तुम इन लोगोंको भली प्रकार देख न पा सकनेहीसे ऐसा कह रही हो। इन लोगोंमें सभी बड़ी सुन्दरी होती हैं।"

सरला बोली—"जब तुमने उसको सुन्दरी समझा था तब तुम कुँआरे थे!"

मैंने सरलाकी ठोड़ी पकड़कर कहा—"तुम्हें अपने रूपका इतना घमंड है?" सरला अप्रतिभ होकर मुझसे हाथ छुड़ाकर भीतर चलीगई।

(७)

ऊपरकी घटनाके दो दिन पीछे मैं संध्याके समय आफिसमें बैठा हुआ कागजपत्रोंको उलटपलट रहा था कि इतनेहीमें बहुत ही सुंदर कांतिवाले एक मुसलमान युवकने आकर सलाम किया। यह युवक जाना पहिचाना हुआसा माळूम होता था, किन्तु ठीक तरहसे मैं यह स्थिर नहीं कर सका कि उसको मैंने कहाँ देखा था।

वह बोला—"क्या वकील साहब, पहिचानते नहीं हैं?"

मैंने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—"माफ कीजिए, याद नहीं आती कि कहाँ आपसे मुलाकात हुई थी।"

युवकने कहा—"अब्दुल मजीदको भूलगये?"

मेरी स्मृतिका कपाट खुलगया। यह तो मेरा वही जाना Romantic (रसप्रिय) अब्दुल मजीद है। बहुत दिनों पीछे उसके मिलनेसे बहुत ही आनन्द हुआ।

मैंने एक बार ही उस बेचारेंको अनेक प्रश्नोंकी झड़ी लगाकर घेर लिया।

मजीदने कहा—"इतने सवालोंका एकसाथ जवाब देना तो मेरे लिए बिल्कुल ही नामुमकिन है। इस समय कुछ गुप्त बात कहना है।"

मैंने अपने मोहर्रिरकी ओरको देखा, जिससे वह बाहर चलागया।

मजीद बोला "आपको पहिली बार ही मैंने पटनामें देखकर पहिचान लिया था।"

मैंने पूछा—"तब अपना परिचय क्यों नहीं दिया?"

वह बोला—"किस मुँहसे देता? आप सब ही कुछ तो जानते हैं।"

मैंने कहा—"लज्जाकी कौन बात थी? प्रेममें लज्जा कैसी, मजीद साहब?"

मजीदने हँसदिया और अपने दिल्ली छोड़नेसे बादकी सब बातें मुझको सुनाई। वह बोला—

"ब्रजेन बाबू—आपसे सही बात कहता हूँ कि मैंने क्वीन पार्कमें बैठकर जिस वक्त सलीनासे हँसी दिल्लगी शुरू की थी, उसी समय उसकी सादी खूब सूरती और उसके भोलेपनने मेरे दिलपर काबू कर लिया था। सलीना भी कहती थी कि वह मुझसे उसी वक्तसे मोहब्बत करने लगी थी। इसके बाद जो दो दिन दिल्लीमें रहना हुआ, उसीमें चुपचाप सब निश्चय करके और आपसे इजाजत लेकर मैंने दिल्ली छोड़ दी।

मैंने उसको अपने घेरे जानेका हाल सुनाया। बेचारा अप्रतिभ होकर कहने लगा—"तब तो जिस बातका डर था वह हो ही गई। इसीसे मैं उस दिन आपके दिल्लीसे चले जानेके लिए बड़ा जोर दे रहा था और जवाहरातके लिए वे लोग जो कुछ भी कह रहे थे वह बिलकुल ही झूठ था। जवाहरात सब सलीनाहीके थे। और खुदाकी कसम, मैंने उनमेंसे एकको भी अभीतक स्पर्श नहीं किया है।"

मैंने कहा—"हाँ! मैंने भी यही सोचा था।"

वह बोला—"इसके बाद कानपुर, फतेहपुर और इलाहाबाद वगैरह शहरोंमें कुछ कुछ दिन रहता हुआ अब अखीरमें पटनेमें आकर रहने लगा हूँ। हम दोनोंकी शादी कानपुरहीमें होगई थी।"

मैंने कहा—" क्या आपके घरके लोगोंको इसका कुछ पता नहीं है!"

वह बोला—" घरवालोंमें तो तब फक्त मेरी माँ और एक चाचा थे। माँ मेरे साथहीमें है। और चाचा अब मरगये हैं। यहाँ रहकर मैं रोजगार करता हूँ। बड़े सुखसे रहा करता था, किन्तु काई हफ्ते भरसे बड़ी बलामें फँसगया हूँ।"

मैंने पूछा—"कैसी बला?" थोड़ेसे मुवक्किल आकर पासके कमरेमें बैठ गये थे। उनकी ओरको देखकर मजीद बोला—"पहले इन लोगोंको रुख्सत कर दीजिए मैं यहीं इन्तजार कर रहा हूँ।"

उसका कहना उचित समझ पड़ा। मैंने झटपट मुवक्किलोंको कार्य करके टाल दिया और फिर मजीदहीके पास लौट आया।

(८)

मजीदने एक कागज निकाला और उसे मेरे हाथमें देकर कहा—" पिछले इतवारके दिन घरमें घुसते वक्त यह कागज इत्तफाकसे मुझे मिलगया।"

मुझको फार्सीका कुछ कुछ ज्ञान था, किन्तु फिर भी उस लेखको मैं नहीं पढ़ पाया। इस लिए मजीदने उजालेकी ओर बढ़ आकर पढ़ना आरंभ किया—" लाअ्नन, बदवख्त, निगरांवाशके मावैाने दहरोजवेसववे गुनाहेखुद वासिलेजहन्नम ख्वाहि शुद।"

अर्थात्—" हे शापग्रस्त, हतभाग्य, सावधान होजा। आजसे दस दिनके भीतर अपने पापोंके फलमें तुझको जहन्नममें जाना पड़ेगा।"

" क्या कहा जाय—ब्रजेन बाबू! यहाँ तो कोई भी मेरा दुश्मन नहीं है। नौकरोंमेंसे भी कोई कुछ बतला नहीं पाया। मेरा सन्देह सलीनाके जिप्सियों पर होता है........।"

मैंने बात काट कर कहा, " सन्देह ही क्यों होता है ? मैंने अपनी आँखोंसे परसोंके दिन सड़कपर कई जिप्सियोंको देखा है । पर यह नहीं जानता कि वे आपकी बीबीके रिश्तेदार हैं या नहीं। "

मजीदका मुँह एक साथ सूखगया । वह बोला—" क्या आप नहीं जानते कि ये लोग कसे बदला लेनेवाले होते हैं । मैंने सलीनासे इन लोगोंके बदला लेनेके बहुतसे किस्से सुने हैं । "

अस्तु मैं उर्दू और फार्सी पढ़लेने और पश्चिममें वास करने पर भी सोलहो आने बंगाली ही था । इस लिए ईरानियोंकी प्रतिहिंसाका नाम आते ही मेरा प्राण काँप उठा । भला कौन कह सकता है कि ये बर्बर मुझको नहीं पहचान पावेंगे और मुझको और मजीदको एकस्थान पर देखकर मुझे भी विपदमें डालनेकी चेष्टा नहीं करेंगे । किन्तु अपने चेहरेपर व्यवहारी लोगोंका साहस दिखलाकर मैंने कहा—" आप क्यों डरते हैं ? अँगरेजी राज्यमें अब वैसे जंगली उपाय नहीं चल सकते हैं।"

मजीद बोला—" और तो है सो है–किन्तु अब दस दिनोंमें केवल दो दिन बाकी रहगये हैं । तब भला कहिए कि इतनी जल्द क्या तरकीब की जा सकती है ? "

मैंने कहा—" पुलीसमें खबर दीजिए । जिप्सियों पर तो वैसेही पुलीसकी कृपादृष्टि रहती है, फिर यह खबर मिलने पीछे तो वे सबके सब गंगाके पार भेज दिये जायँगे । "

मजीदने चिन्ताके साथ कहा " यह बात होते ही सब बात फैल जायगी । पहले तो मैं सलीनाहीको कुछ बतलाना नहीं चाहता हूँ और दूसरे इस जगह मेरी भी कुछ इज्जत होगई है । मैं हर खास आममें यह बात फैलने देना नहीं चाहता हूँ कि मेरा जिप्सियोंसे कुछ ताल्लुक़ है । "

मैंने जिज्ञासाकी कि " इस बातको बीबीसे कह देनेमें बुराई भी क्या है ? अपने रिश्तेदारोंके स्वभावको जैसा वह समझ सकती हैं वैसा कोई भी नहीं समझ सकता।"

सारांश यह है कि अब सलीना पर्दानशीन बीबी थीं, इस लिए उनके संबंधमें सब बातें बड़ी श्रद्धाके साथ कहनी पड़ती थीं। मजीद बोला—" ब्रजेन बाबू, यह सही है कि सलीना मुझसे बड़ी मुहब्बत करती है, लेकिन फिर भी कहावत है कि खून पानीसे गाढ़ा होता है। आप जानते ही हैं कि जंगलकी चिड़ियाको मैंने पकड़कर पर्दानशीन बनाया है।"

यह कथन मुझको सत्य जान पड़ा और मैंने कहा—" क्या आपकी बीबीने उनके संबंधमें अब तक कुछ कहा नहीं ?"

मजीदने कहा—" हाँ, कितनी ही बार कह चुकी है कि इन खुशीके दिनोंमें कहीं मेरी अम्मा मिलजाती तो अच्छा था। किन्तु यह नहीं कह सकता कि अम्मा मिलकर उसे सलाह क्या देंगी ?"

दोनों कितनी ही देर वादविवाद करने पर भी कुछ स्थिर नहीं कर सके। दूसरे दिन संध्याको फिर उसके साथ सलाह करनेकी सम्मति मैंने प्रकट की।

इन सब बातोंमेंसे सरलाको कोई भी बात मैंने नहीं सुनाई।

(९)

सरला बोली—" उस फिरनेवाले दलकी एक स्त्री आज हमारे घर भी आई थी। बुधुआने उसको निकाल दिया।"

मैं यह बात सुनते ही काँप उठा और अपने डरको छिपाकर बोला कि कब आई थी ?

सरलाने उत्तर दिया कि दो पहरके समय मैं बरामदेमें चली गई थी। वहाँ पर मैंने देखा कि एक स्त्री और एक पुरुष घरके चारों ओर चक्कर काट रहे थे और कुछ देख रहे थे। मुझको देखते ही वह स्त्री कहने लगी—"माजी, फीरोज़ा लीजिएगा?" "मैंने कहा—भीतर आओ।"

किन्तु बुधुआने उन लोगोंको भगा दिया और हमसे कहा—"ऐसे लोगोंको घरमें घुसने देना ठीक नहीं है।"

मैंने मन ही मन नौकरकी प्रशंसा की, किन्तु एक अभावनीय भय बराबर हृदयको दाबता जा रहा था। इस एक नई विपद्को सिर पर आई हुई देखकर जी बहुत ही घबड़ाया। भाँति भाँतिकी चिन्तायें आकर घेरने लगीं।

इसके बाद जब नीचे उतरकर आफिसकी खिड़कीके पासहीमें मुझे एक कागजका टुकड़ा मिला, तब तो मैं डरके मारे और भी अधीर होगया। बड़ी कठिनतासे मैंने उसको पढ़ा। उस पर उर्दूमें लिखा हुआ था—"काफ़िर शैतान ईरानियोंका इन्तकाम ख़याल करो। तबाह करूँगा अगर नहीं लड़कीका पता बताओ तो" अर्थात् काफिर शैतान, ईरानियोंके बदलेका बिचार कर। यदि लड़कीका पता नहीं बतलावेगा तो तेरा सर्व नाश कर दूँगा।

मैंने काँपते हुए हाथमें पत्र लिए हुए उसको पढ़ा। सोचा कि मजीदका चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु मैं इस विषयमें पुलीसका आश्रय अवश्य लूँगा। मुझसे तो विना दोष किसी गुप्त घातकके हाथोंमें प्राण नहीं दिया जायगा।

बस ठीक उसी समय मजीद भी आ पहुँचा। मेरी चिट्ठी पढ़ते ही उसके चेहरेका मटीला रंग एक बार ही मलीन होगया। चिट्ठीको इधर

उधर लौट पौट करके वह बोला—"एक ही कागज और एक ही लिखावट है, अब क्या करना चाहिए?"

मैंने कहा—"आप चाहे जो कुछ भी करें, किन्तु मैं तो इस मामलेको पुलीसके हाथमें दूँगा।"

मजीद बोला—"लिल्लाह, ऐसा न करना। अगर अपनी हिफाजत ही भरका आपको ख़याल हो, तो यह खूब समझ रखिए कि मेरे जीता रहते कोई आपका बाल भी नहीं छू सकेगा।"

मैंने कहा—"मजीद साहब! ढंग कुछ बहुत अच्छे नहीं दिखाई पड़ते हैं!"

वह बोला—"मैंने एक तर्कीब सोची है। मैंने सब हाल सलीनाको सुनाया और उसको यह भी समझा दिया कि ब्रजेन बाबूको तुमसे कुछ खास बात कहना है। वह बुरका ओढ़े हुए आपसे मिलनेको राजी है।"

मेरी तो बराबर ही यह इच्छा थी कि इस विषयमें सलीना बीबीसे सलाह करना उचित है। मैंने खूब बिचार कर जाना कि उन लोगोंकी प्रतिहिंसाका कारण केवल स्नेह ही है। इस लिए यह समझमें आया कि यदि उन लोगोंको सलीनासे मिलने दिया जायगा तो वह उन सबको समझा दे सकेगी। मजीदसे कहा—"मुझहीसे क्या है? आप स्वयं ही उनको क्यों नहीं समझा देते हैं?"

वह बोला—"मैं उसको ठीक नहीं समझा पाऊँगा। आप ही चलकर समझा दें। अब सलीना हिन्दुस्थानी भाषा खूब सीख गई है।"

बहुत कहने सुननेके पीछे मैं मजीदकी बात पर राजी हुआ और पाकेटमें रिवाल्वर (तमंचा) रखकर कृष्णका नाम जपता हुआ मैं उसके घरके ओरको चल दिया। चारों ओर देखकर चलता जा रहा

था! कौन जाने कि ईरानी जिप्सी पीछेसे आकर कहीं छातीमें छुरी न खोंस दें।

(१०)

मजीद बोला—"सलीना आती है।"

मैंने पूछा—"बाहरका पहिरेदार तो ठीक है?"

वह बोला—"दो आदमी दरवाजेके पहिरे पर हैं—डर क्या है ब्रजेन बाबू?"

उसकी बात पूरी भी नहीं होने पाई थी कि दो जने घरमें घुस आये। मैंने देखा तो उनमेंसे एक तो तोतारामके होटलवाला ईरानी था और दूसरी डरावनी ईरानी स्त्री थी।

मैं डरकर 'हरि! हरि!' कहता हुआ उछल पड़ा और घरके एक कोनेमें जाकर रिवाल्वर सँभालकर बोला—"भागो यहाँसे।"

उनको देखकर मजीद उछल कर बोला—"अल अज़मतो लिल्लाह" (भगवान् रक्षा करो)।

उस स्त्रीने मेरी ओर आँख भी न डाल कर मजीदसे कहा—"लाअ्‌न-बेईमान, दुख्तरेमन कजाअस्त?" (पापी, विश्वासघातक! मेरी कन्या कहाँ है?)"

मजीद बोला—"दुख्तरे शुमा?" (तुम्हारी लड़की?)।

भूखी बाघिनकी भाँति ईरानी स्त्री कहने लगी—"सलीना कुजास्त?" (सलीना कहाँ है?)

मजीदने हिन्दीमें कहा—"यहाँसे चली जाओ नहीं तो पुलीसको बुलाता हूँ।"

स्त्रीकी आँखें भयंकरतासे घूम रही थीं। उसने बड़े धीर भावसे अपनी बगलमेंसे एक छुरी निकाली। मैंने अपना रिवाल्वर उठाया किन्तु

उस स्त्रीने इधर आँख भी नहीं उठाई । उसकी आँखोंके अतिरिक्त और कहीं भी उत्तेजना नहीं मालूम होती थी। फिर एक बारगी मजीदकी ओरको बढ़कर उसने पशुओंकी भाँतिसे मजीदका गला पकड़लिया और अपने सीधे हाथकी छुरीको मजीदकी गर्दन पर रक्खा।

अधिक क्या कहूँ, मेरे हाथमेंसे तो अपने रिवाल्वरका घोड़ा दाबने भरकी शक्ति भी निकल भागी थी। जिस समय कि ईरानी छुरीने मजीदके गलेको छुआ था ठीक उसी समय चन्द्रमाके उजालेके रंगवाली एक देवी मूर्त्तिने आकर वज्रकी भाँति जोरसे उस स्त्रीका हाथ पकड़ लिया। उस स्त्रीने आँखें घुमाकर पीछेको देखा और जान पड़ता है कि हाथ पकड़नेवालीकी सुन्दरता देखकर वह अंधी होगई । क्योंकि उसका दूसरा हाथ भी मजीदके गलेपरसे हट गया।

विस्मित स्त्री बोली—" सलीना!"

सलीनाने सुन्दर और वीणाको भी लज्जित कर देनेवाले स्वरमें कहा—" शर्म, शर्म! मादर तू दामादे खुदरामे कशी? (मा, छिः, छिः! तू अपने जमाईको ही मारे डाल रही है!)

उसकी माँका रुका हुआ झरना अब बड़े जोरकी नदीकी भाँति वह निकला। वह बोली—

" दामाद! दामाद किसका! जो कि मेरे दिलक लालको चोरकी तरहसे तोड़ लेआकर दो काफिरोंके साथमें मिला और तुमको गुमराह किया—वह मेरा दामाद! बेईमान दुश्मन, बेशर्म लड़की, किसको मेरा जमाई बतला रही है। हाथ छोड़ इन दोनोंको मार डालकर वनों और जंगलोंमें फिर तुझको साथ लिए घूमूँगी।"

सबने मेरी ओरको देखा। मर्दने अबतक कुछ भी नहीं किया था, किन्तु अब जान पड़ा कि वह मुझपर आक्रमण करेगा। रिवाल्वरके

सँभाल कर मैंने थाम लिया इस समय मेरे जीपर जो बीत रही थी वह कही नहीं जा सकती है।

सलीना—" अम्मा, तुझको धोखा हुआ। विवाहके पहले मैंने स्वामीको छुआ भी नहीं और इन बंगाली बाबूजीको उस दिन दिल्लीमें देखने पीछे अब आज देख रही हूँ।"

दुर्गा! दुर्गा! बीबीजीने सच बात कह कर मेरे प्राणोंमें आशा डाल दी। उस घरकी धुँधली रोशनीमें उसका कमल जैसा मुख एक स्वर्गीय चमकसे दमकने लगा। इन सात आठ बरसों तक परदेमें रह कर सलीनाकी सुन्दरता कई गुणा बढ़ गई, यह बात सोच कर मेरे जीको बड़ा ही आनन्द हुआ। वैसा लावण्य नवाबोंके हरमके योग्य था।

मजीदकी स्त्रीके वीणाको लज्जित करनेवाले कण्ठस्वरको सुनकर भी ईरानी स्त्री शांत नहीं हुई। वह लड़कीसे बोली—" छिः सलीना अपने वंशकी मर्यादाकी रक्षा करो। चलो इन दोनों शैतानोंको मारकर भाग चलें। तुम सुलेमानके घरानेकी लड़की हो। माँकी बातको टालना नहीं।"

उसके सीधे और मुलायम प्रस्तावको सुनकर मैं फिर काँप उठा। सलीना बोली "माँ, क्या पागल हो गई है? यदि तू माँकी भाँति आशीर्वाद देने आई होती, तो मैं तेरी पूजा करती। खुदा जानता है कि कितनी ही रातों और कितने ही दिनों तक तेरा स्नेह पानेके लिए हृदय उद्वेलित होता रहा है। छिः माँ बर्बरता भूल जा। कन्या और जमाईको आशीर्वाद दे।"

आहा! कैसी स्वर्गीय भाषा है! कैसा उच्च मन है! जी चाहता था कि उस भाषाको सदा ही सुनता रहूँ। ऐसी स्वामिभक्ति तो मैंने कहीं भी नहीं देखी।

उसकी माँ बोली—" शैतान, क्या पागल होगई है? क्या हँसी करती है? इन दोनोंके साथही में तुझको भी मार डालूँगी।"

पलभर में अपना हाथ फिरसे छुड़ाकर वह स्त्री तेज छुरी हाथमें लिये हुए मजीदकी ओरको झपटी। सलीनाने भी बड़ी फुर्तीसे फिर उसको पकड़ लिया, और उस मर्दको आगे बढ़ते देखकर मजीदके द्वारवान्ने उसे भूमिपर दे मारा। मैंने दौड़ जाकर उसको बाँध लिया।

सलीना बोली—" माता—याद रखना कि मैं भी ईरानी स्त्री हूँ। भला तुम्हारी क्या ताब है कि जो मेरे सामने मेरे स्वामीके शरीरको हाथ लगा सको?"

माँ बेटीमें बहुतसी बातें होती रहीं। उस स्त्रीके हृदयमें जितनी प्रतिहिंसाकी आग धधक रही थी सलीनाकाजी भी प्रेमके शांतिमय भावसे उतना ही भरा हुआ था, इस लिए देवी और पिशाचिनीमें मेल नहीं हुआ।

सलीनाने उसको छोड़ दिया और हमने भी सलीनाके कहनेसे उस मर्दको छोड़ दिया। सलीना बोली—" माँ—अब भी मैं यही कहती हूँ कि अपनी लड़कीहीके घर रहो। मैं सदा तुम्हारी पूजा करती रहूँगी। किन्तु जिसके साथमें कि मेरा बिवाह होगया है, उसके लिए यदि एक बात भी मुखसे निकालोगी तो मैं फिर तुमसे कोई भी वास्ता नहीं रक्खूँगी।"

जिप्सी स्त्री बोली—" तेरे घरमें शैतान रहेगा। मैं तो इस जगहको जहन्नम समझती हूँ। इतने कष्टसे ढूँढ़ने पर भी आज जो इनाम तुझसे मिला है, उसके बदलेमें तेरा घर जहन्नुम और श्मशान हो जाय।"

वह पुरुष और वह स्त्री दोनों चले गये।

उसके बाद पाँच बरस बीत चुके । उस ईरानी स्त्रीके शापसे श्मशान हो जानेके बदले वह घर स्वर्ग बनगया है । और सलीनासे गुलिस्तांबोस्तां तक फार्सी पढ़कर सरला मेरे कानोंको अशुद्ध या अर्द्ध-शुद्ध फारसी बोल बोलकर झल्ला देती है । उस दिनसे सलीना देखनेको नहीं मिली । किन्तु मजीद और सरला कहती है कि वह बंगालियोंकी भाँति बंगाली बोल सकती है । मेरी समझमें इन सब बातोंसे उसीके अपने गुणोंका प्रकाशन होता है, इसमें उसको पढ़ानेवाली सरलाकी कोई बहादुरी नहीं है ।

अशुभ मुहूर्त्त ।

(१)

सब ही बातोंमें एक शुभ और एक अशुभ मुहूर्त्त देखनेमें आता है । नहीं कह सकती कि मेरे ब्याहकी बात भी कैसे अशुभ मुहूर्त्तमें उठी थी । तबसे अतुल सुखमें रहने पर भी मेरे हृदयके भीतरका सुख लोप होगया । अच्छा अब इन बातोंको साफ कहती हूँ—तभी कुछ समझमें आवेगा ।

मेरे पिता बहरामपुरके डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर थे । अपने पिताकी मैं इकलौती तो बेटी थी, इसीसे मेरे ब्याहके संबंधमें उनको बड़ी उत्कण्ठा थी । पिताके पास धनकी कमी तो थी ही नहीं । जिसमें देखने और सुननेमें सब प्रकारसे भला वर मिले इस लिए उन्होंने चेष्टा करनेमें कसर नहीं की ।

मेरी माताने पहिलेहीसे अपनी एक बाल्य सखीके लड़केके साथमें मेरा ब्याह करनेका निश्चय कर रक्खा था । वह लड़का वैसे तो

पिता बोले—“ प्यारी ! तुम क्या जानो, धन संपत्ति कुछ थोड़े ही टिकती है। पिताके रोजगारको जाते रहते कुछ विशे नहीं लगती। मेरी इच्छा तो यह है कि लड़का अपने ही हा कमावे। ऐसा होनेपर कुछ चिन्ता नहीं रहेगी। अब मुझको मासकी छुट्टी मिलगई है। कलकत्तेमें जाकर एक दो संबंध और खोजूँगा। और तब इस विषयमें जैसा कुछ होगा स्थिर कर दूँगा।

माँने कहा—“ ब्याह गोविन्दहीके साथमें ठीक करना होगा, किंतु तुम देर करनेसे नहीं रुकोगे। इधर लड़की भी सयानी होगई। जो मिलनहार होता तो अब तक मिल ही न गया होता।”

मैं नहीं कह सकती कि पिता क्या विचारने लगे। मैं भी फिर यह देखनेके लिए नहीं ठहरी कि अब आगे क्या बातें होंगी। जिसकी बातचीत थी वह सब जान ही चुकी थी। इसके बाद एक ही सप्ताहके पीछे हम सब कलकत्ते जा पहुँचे।

(३)

हम लोगोंका अगहनके महीने में कलकत्ते पहुँचना हुआ। देखते देखते तीन महीने कट गये। कलकत्तेमें मेरा जी नहीं लगा। सबेरे उठकर छतपर जा बैठती थी। वह नये निकले हुए सूर्यकी मीठी ज्योति और वह मनको मोहनेवाला सुन्दर मलयानिल अब कहाँ है! यहाँ नये पल्लवोंकी हरी शोभा आँखोंको तृप्त नहीं करती थी। आमके बौरकी मीठी गंध प्राणोंको पागल नहीं बनाती थी और वसन्तके सहचर पपीहे! तेरे मीठे कण्ठस्वरका अमृत भी यहाँ कलुषित होगया!

एक दिन इसी प्रकारके समयमें छतपर मैं बैठी हुई थी। माँने आकर कहा—पंकज, बेटी नीचेआ, आज तुझको देखनेको आनेवाले हैं। जरा तुझे पहिना उढ़ादें; दूल्हा आप ही देखने आवेगा। कलकत्तेहीका लड़का जो ठहरा!”